

अध्याय 4

अमरकान्त को ज्योंही मालूम हुआ कि सलीम यहां का अफसर होकर आया है, वह उससे मिलने चला। समझा, खूब गप-शप होगी। यह खयाल तो आया, कहीं उसमें अफसरी की बू न आ गई हो लेकिन पुराने दोस्त से मिलने की उत्कंठा को न रोक सका। बीस-पच्चीस मील का पहाड़ी रास्ता था। ठंड खूब पड़ने लगी थी। आकाश कुहरे की धुंध से मटियाला हो रहा था और उस धुंध में सूर्य जैसे टटोल-टटोलकर रास्ता ढूंढता हुआ चला जाता था। कभी सामने आ जाता, कभी छिप जाता। अमर दोपहर के बाद चला था। उसे आशा थी कि दिन रहते पहुंच जाऊंगा किंतु दिन ढलता जाता था और मालूम नहीं अभी और कितना रास्ता बाकी है। उसके पास केवल एक देशी कंबल था। कहीं रात हो गई, तो किसी वृक्ष के नीचे टिकना पड़ जाएगा। देखते-ही-देखते सूर्यदेव अस्त भी हो गए। अंधेरा जैसे मुंह खोले संसार को निगलने चला आ रहा था। अमर ने कदम और तेज किए। शहर में दाखिल हुआ, तो आठ बज गए थे।

सलीम उसी वक्त क्लब से लौटा था। खबर पाते ही बाहर निकल आया, मगर उसकी सज-धज देखी, तो झिझका और गले मिलने के बदले हाथ बढ़ा दिया। अर्दली सामने ही खड़ा था। उसके सामने इस देहाती से किसी प्रकार की घनिष्ठता का परिचय देना बड़े साहस का काम था। उसे अपने सजे हुए कमरे में भी न ले जा सका। अहाते में छोटा-सा बाग था। एक वृक्ष के नीचे उसे ले जाकर उसने कहा-यह तुमने क्या धज बना रखी है जी, इतने होशियार कब से हो गए- वाह रे आपका कुरता मालूम होता है डाक का थैला है, और यह डाबलशू जूता किस दिसावर से मंगवाया है- मुझे डर है, कहीं बेगार में न धार लिए जाओ।

अमर वहीं जमीन पर बैठ गया और बोला-कुछ खातिर-तवाजो तो की नहीं, उल्टे और फटकार सुनाने लगे। देहातियों में रहता हूं, जेंटलमैन बनूं तो कैसे निबाह हो- तुम खूब आए भाई, कभी-कभी गप-शप हुआ करेगी। उधर की खैर-कैफियत कहो। यह तुमने नौकरी क्या कर ली- डटकर कोई रोजगार करते, सूझी भी तो गुलामी।

सलीम ने गर्व से कहा-गुलामी नहीं है जनाब, हुकूमत है। दस-पांच दिन में मोटर आई जाती है, फिर देखना किस शान से निकलता हूं मगर तुम्हारी यह हालत देखकर दिल टूट गया। तुम्हें यह भेष छोड़ना पड़ेगा।

अमरकान्त के आत्म-सम्मान को चोट लगी। बोला-मेरा खयाल था, और है कि कपड़े महज जिस्म की हिफाजत के लिए हैं, शान दिखाने के लिए नहीं।

सलीम ने सोचा, कितनी लचर-सी बात है। देहातियों के साथ रहकर अक्ल भी खो बैठा। बोला-खाना भी महज जिस्म की परवरिश के लिए खाया जाता है, तो सूखे चने क्यों नहीं चबाते- सूखे गेहूं क्यों नहीं फांकते- क्यों हलवा और मिठाई उड़ाते हो-

'मैं सूखे चने ही चबाता हूं।'

'झूठे हो। सूखे चनों पर ही यह सीना निकल आया है मुझसे डयोढ़े हो गए, मैं तो शायद पहचान भी न सकता।'

'जी हां, यह सूखे चनों ही की बरकत है। ताकत साफ हवा और संयम में है। हलवा-पूरी से ताकत नहीं होती, सीना नहीं निकलता। पेट निकल आता है। पच्चीस मील पैदल चला आ रहा हूं। है दम- जरा पांच ही मील चलो मेरे साथ।'

'मुआफ कीजिए, किसी ने कहा-बड़ी रानी, तो आओ पीसो मेरे साथ। तुम्हें पीसना मुबारक हो। तुम यहां कर क्या रहे हो?'

'अब तो आए हो, खुद ही देख लो। मैंने जिंदगी का जो नक्शा दिल में खींचा था, उसी पर अमल कर रहा हूं। स्वामी आत्मानन्द के आ जाने से काम में और भी सहूलियत हो गई है।'

ठंड ज्यादा थी। सलीम को मजबूर होकर अमरकान्त को अपने कमरे में लाना पड़ा।

अमर ने देखा, कमरे में गद्देदार कोच हैं, पीतल के गमले हैं, जमीन पर कालीन है, मध्य में संगमरमर की गोल मेज है।

अमर ने दरवाजे पर जूते उतार दिए और बोला-किवाड़ बंद कर दूं, नहीं कोई देख ले, तो तुम्हें शर्मिंदाहोना पड़े। तुम साहब ठहरे।

सलीम पते की बात सुनकर झेंप गया। बोला-कुछ-न-कुछ खयाल तो होता ही है भई, हालांकि मैं व्यसन का गुलाम नहीं हूं। मैं भी सादी जिंदगी बसर करना चाहता था लेकिन अब्बाजान की फरमाइश कैसे टालता-प्रिंसिपल तक कहते थे, तुम पास नहीं हो सकते लेकिन रिजल्ट निकला तो सब दंग रह गए। तुम्हारे ही खयाल से मैंने यह जिला पसंद किया। कल तुम्हें कलक्टर से मिलाऊंगा। अभी मि. गजनवी से तो तुम्हारी मुलाकात न होगी। बड़ा शौकीन आदमी है मगर दिल का साफ। पहली ही मुलाकात में उससे मेरी बेतकल्लुफी हो गई। चालीस के करीब होंगे, मगर कंपेबाजी नहीं छोड़ी।

अमर के विचार में अफसरों को सच्चरित्र होना चाहिए था। सलीम सच्चरित्रता का कायल न था। दोनों मित्रों में बहस हो गई।

अमर बोला-सच्चरित्र होने के लिए खुशक होना जरूरी नहीं।

मैंने तो मुल्लाओं को हमेशा खुशक ही देखा। अफसरों के लिए महज कानून की पाबंदी काफी नहीं। मेरे खयाल में तो थोड़ी-सी कमजोरी इंसान का जेवर है। मैं जिंदगी में तुमसे ज्यादा कामयाब रहा। मुझे दावा है कि मुझसे कोई नाराज नहीं है। तुम अपनी बीबी तक को खुश न रख सके। मैं इस मुल्लापन को दूर से सलाम करता हूं। तुम किसी जिले के अफसर बना दिए जाओ, तो एक दिन न रह सको। किसी को खुश न रख सकोगे।

अमर ने बहस को तूल देना उचित न समझा क्योंकि बहस में वह बहुत गर्म हो जाया करता था।

भोजन का समय आ गया था। सलीम ने एक शाल निकालकर अमर को ओढ़ा दिया। एक रेशमी स्लीपर उसे पहनने को दिया। फिर दोनों ने भोजन किया। एक मुद्दत के बाद अमर को ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला। मांस तो उसने न खाया लेकिन और सब चीजें मजे से खाईं।

सलीम ने पूछा-जो चीज खाने की थी, वह तो तुमने निकालकर रख दी।

अमर ने अपराधी भाव से कहा-मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन भीतर से इच्छा नहीं होती। और कहो, वहां की क्या खबरें हैं- कहीं शादी-वादी ठीक हुई- इतनी कसर बाकी है, उसे भी पूरी कर लो।

सलीम ने चुटकी ली-मेरी शादी की फिक्र छोड़ो, पहले यह बताओ कि सकीना से तुम्हारी शादी कब हो रही है- वह बेचारी तुम्हारे इंतजार में बैठी हुई है।

अमर का चेहरा फीका पड़ गया। यह ऐसा प्रश्न था, जिसका उत्तर देना उसके लिए संसार में सबसे मुश्किल काम था। मन की जिस दशा में वह सकीना की ओर लपका था, वह दशा अब न रही थी। तब सुखदा उसके जीवन में एक बाधा के रूप में खड़ी थी। दोनों की मनोवृत्तियों में कोई मेल न था। दोनों जीवन को भिन्न-भिन्न कोण से देखते थे। एक में भी यह सामर्थ्य न थी कि वह दूसरे को हम-खयाल बना लेता लेकिन अब वह हालत न थी। किसी दैवी विधन ने उनके सामाजिक बंधन को और कसकर उनकी आत्माओं को मिला दिया था। अमर को पता नहीं, सुखदा ने उसे क्षमा प्रदान की या नहीं लेकिन वह अब सुखदा का उपासक था। उसे आश्चर्य होता था कि विलासिनी सुखदा ऐसी तपस्विनी क्योंकि हो गई और यह आश्चर्य उसके अनुराग को दिन-दिन प्रबल करता जाता था। उसे अब उस असंतोष का कारण अपनी ही अयोग्यता में छिपा हुआ मालूम होता था, अगर वह अब सुखदा को कोई पत्र न लिख सका, तो इसके दो कारण थे। एक जो लज्जा और दूसरे अपनी पराजय की कल्पना। शासन का वह पुरुषोचित भाव मानो उसका परिहास कर रहा था। सुखदा स्वच्छंद रूप से अपने लिए एक नया मार्ग निकाल सकती है, उसकी उसे लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है, यह विचार उसके अनुराग की गर्दन को जैसे दबा देता था। वह अब अधिक-से-अधिक उसका अनुगामी हो सकता है। सुखदा उसे समरक्षेत्र में जाते समय केवल केसरिया तिलक लगाकर संतुष्ट नहीं है, वह उससे पहले समर में कूदी जा रही है, यह भाव उसके आत्मगौरव को चोट पहुंचाता था।

उसने सिर झुकाकर कहा-मुझे अब तजुर्बा हो रहा है कि मैं औरतों को खुश नहीं रख सकता। मुझमें वह लियाकत ही नहीं है। मैंने तय कर लिया है कि सकीना पर जुल्म न करूंगा।

'तो कम-से-कम अपना फैसला उसे लिख तो देते।'

अमर ने हसरत भरी आवाज में कहा-यह काम इतना आसान नहीं है सलीम, जितना तुम समझते हो। उसे याद करके मैं अब भी बेताब हो जाता हूं। उसके साथ मेरी जिंदगी जन्नत बन जाती। उसकी इस वफा पर मर जाने को जी चाहता है कि अभी तक...

यह कहते-कहते अमर का कंठ-स्वर भारी हो गया।

सलीम ने एक क्षण के बाद कहा-मान लो मैं उसे अपने साथ शादी करने पर राजी कर लूं तो तुम्हें नागावार होगा-

अमर को आंखें-सी मिल गईं-नहीं भाईजान, बिलकुल नहीं। अगर तुम उसे राजी कर सको, तो मैं समझूंगा, तुमसे ज्यादा खुशनसीब आदमी दुनिया में नहीं है लेकिन तुम मजाक कर रहे हो। तुम किसी नवाबजादी से शादी का खयाल कर रहे होगे।

दोनों खाना खा चुके और हाथ धोकर दूसरे कमरे में लेटे।

सलीम ने हुक्के का कश लगाकर कहा-क्या तुम समझते हो, मैं मजाक कर रहा हूं- उस वक्त जरूर मजाक किया था लेकिन इतने दिनों में मैंने उसे खूब परखा। उस वक्त तुम उससे न मिल जाते, तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि वह इस वक्त कहीं और होती। तुम्हें पाकर उसे फिर किसी की ख्वाहिश नहीं रही। तुमने उसे कीचड़ से निकालकर मंदिर की देवी बना दिया और देवी की जगह बैठकर वह सचमुच देवी हो गई। अगर तुम उससे शादी कर सकते हो तो शौक से कर लो। मैं तो मस्त हूं ही, दिलचस्पी का दूसरा सामान तलाश कर लूंगा, लेकिन तुम न करना चाहो तो मेरे रास्ते से हट जाओ फिर अब तो तुम्हारी बीबी तुम्हारे लिए तुम्हारे पंथ में आ गई। अब तुम्हारे उससे मुंह फेरने का कोई सबब नहीं है।

अमर ने हुक्का अपनी तरफ खींचकर कहा-मैं बड़े शौक से तुम्हारे रास्ते से हट जाता हूँ लेकिन एक बात बतला दो- तुम सकीना को भी दिलचस्पी की चीज समझ रहे हो, या उसे दिल से प्यार करते हो-

सलीम उठ बैठे-देखो अमर मैंने तुमसे कभी परदा नहीं रखा इसलिए आज भी परदा न रखूंगा। सकीना प्यार करने की चीज नहीं, पूजने की चीज है। कम-से-कम मुझे वह ऐसी ही मालूम होती है। मैं कसम तो नहीं खाता कि उससे शादी हो जाने पर मैं कंठी-माला पहन लूंगा लेकिन इतना जानता हूँ कि उसे पाकर मैं ज़िंदगी में कुछ कर सकूंगा। अब तक मेरी ज़िंदगी सैलानीपन में गुजरी है। वह मेरी बहती हुई नाव का लंगर होगी। इस लंगर के बगैर नहीं जानता मेरी नाव किस भंवर में पड़ जाएगी। मेरे लिए ऐसी औरत की जरूरत है, जो मुझ पर हुकूमत करे, मेरी लगाम खींचती रहे।

अमर को अपना जीवन इसलिए भार था कि वह अपनी स्त्री पर शासन न कर सकता था। सलीम ऐसी स्त्री चाहता था जो उस पर शासन करे, और मजा यह था कि दोनों एक सुंदरी में मनोनीत लक्षण देख रहे थे।

अमर ने कौतूहल से कहा-मैं तो समझता हूँ सकीना में वह बात नहीं है, जो तुम चाहते हो।

सलीम जैसे गहराई में डूबकर बोला-तुम्हारे लिए नहीं है मगर मेरे लिए है। वह तुम्हारी पूजा करती है, मैं उसकी पूजा करता हूँ।

इसके बाद कोई दो-ढाई बजे रात तक दोनों में इधर-उधर की बातें होती रहीं। सलीम ने उस नए आंदोलन की भी चर्चा की जो उसके सामने शुरू हो चुका था और यह भी कहा कि उसके सफल होने की आशा नहीं है। संभव है, मुआमला तूल खींचे।

अमर ने विस्मय के साथ कहा-तब तो यों कहो, सुखदा ने वहां नई जान डाल दी।

'तुम्हारी सास ने अपनी सारी जायदाद सेवाश्रम के नाम वक़्त कर दी।'

'अच्छा ।'

'और तुम्हारे पिदर बुजुर्गवार भी अब कौमी कामों में शरीक होने लगे हैं।'

'तब तो वहां पूरा इंकलाब हो गया ।'

सलीम तो सो गया, लेकिन अमर दिन-भर का थका होने पर भी नींद को न बुला सका। वह जिन बातों की कल्पना भी न कर सकता था वह सुखदा के हाथों पूरी हो गई मगर कुछ भी हो, है वही अमीरी, जरा बदली हुई सूरत में। नाम की लालसा है और कुछ नहीं मगर फिर उसने अपने को धिक्कारा। तुम किसी के अंतःकरण की जात क्या जानते हो- आज हजारों आदमी राष्ट्र सेवा में लगे हुए हैं। कौन कह सकता है, कौन स्वार्थी है, कौन सच्चा सेवक-

न जाने कब उसे भी नींद आ गई।

दो

अमरकान्त के जीवन में एक नया उत्साह चमक उठा है। ऐसा जान पड़ता है कि अपनी यात्रा में वह अब एक घोड़े पर सवार हो गया है। पहले पुराने घोड़े को ऐड़ और चाबुक लगाने की जरूरत पड़ती थी। यह नया घोड़ा कनौतियां खड़ी किए सरपट भागता चला जाता है। स्वामी आत्मानन्द, काशी, पयाग, गूदड़ सभी से तकरार हो जाती है। इन लोगों के पास पुराने घोड़े हैं। दौड़ में पिछड़ जाते हैं। अमर उनकी मंद गति पर बिगड़ता है-इस तरह तो काम नहीं चलने का,

स्वामीजी आप काम करते हैं कि मजाक करते हैं इससे तो कहीं अच्छा था कि आप सेवाश्रम में बने रहते।

आत्मानन्द ने अपने विशाल वक्ष को तानकर कहा-बाबा, मेरे से अब और नहीं दौड़ा जाता। जब लोग स्वास्थ्य के नियमों पर ध्यान न देंगे, तो आप बीमार होंगे, आप मरेंगे। मैं नियम बतला सकता हूँ, पालन करना तो उनके ही अधीन है।

अमरकान्त ने सोचा-यह आदमी जितना मोटा है, उतनी ही मोटी इसकी अक्ल भी है। खाने को डेढ़ सेर चाहिए, काम करते ज्वर आता है। इन्हें संन्यास लेने से न जाने क्या लाभ हुआ-

उसने आंखों में तिरस्कार भरकर कहा-आपका काम केवल नियम बताना नहीं है, उनसे नियमों का पालन कराना भी है। उनमें ऐसी शक्ति डालिए कि वे नियमों का पालन किए बिना रह ही न सकें। उनका स्वभाव ही ऐसा हो जाय। मैं आज पिचौरा से निकला गांव में जगह-जगह कूड़े के ढेर दिखाई दिए। आप कल उसी गांव से हो आए हैं, क्यों कूड़ा साफ नहीं कराया गया- आप खुद गावड़ा लेकर क्यों नहीं पिल पड़े- गेरूवे वस्त्र लेने ही से आप समझते हैं लोग आपकी शिक्षा को देववाणी समझेंगे-

आत्मानन्द ने सफाई दी-मैं कूड़ा साफ करने लगता, तो सारा दिन पिचौरा में ही लग जाता। मुझे पांच-छः गांवों का दौरा करना था।

'यह आपका कोरा अनुमान है। मैंने सारा कूड़ा आधा घंटे में साफ कर दिया। मेरे गावड़ा हाथ में लेने की देर थी, सारा गांव जमा हो गया और बात-की-बात में सारा गांव झक हो गया।'

फिर वह गूदड़ चौधरी की ओर फिरा-तुम भी दादा, अब काम में ढिलाई कर रहे हो। मैंने कल एक पंचायत में लोगों को शराब पीते पकड़ा। सौताड़े की बात है। किसी को मेरे आने की खबर तो थी नहीं, लोग आनंद में बैठे हुए थे और बोतलें सरपंच महोदय के सामने रखी हुई थीं। मुझे देखते ही तुरंत बोतलें उड़ा दी गईं और लोग गंभीर बनकर बैठ गए। मैं दिखावा नहीं चाहता, ठोस काम चाहता हूँ।

अमर ने अपनी लगन, उत्साह, आत्म-बल और कर्मशीलता से अपने सभी सहयोगियों में सेवा-भाव उत्पन्न कर दिया था और उन पर शासन भी करने लगा था। सभी उसका रोब मानते थे। उसके गुलाम थे।

चौधरी ने बिगड़कर कहा-तुमने कौन गांव बताया, सौताड़ा- मैं आज ही उसके चौधरी को बुलाता हूँ। वही हरखलाल है। जन्म का पियक्कड़। दो दफे सजा काट आया है। मैं आज ही उसे बुलाता हूँ।

अमर ने जांघ पर हाथ पटककर कहा-फिर वही डांट-फटकार की बात। अरे दादा डांट-फटकार से कुछ न होगा। दिलों में बैठिए। ऐसी हवा फैला दीजिए कि ताड़ी-शराब से लोगों को घृणा हो जाय। आप दिन-भर अपना काम करेंगे और चैन से सोएंगे, तो यह काम हो चुका। यह समझ लो कि हमारी बिरादरी चेत जाएगी, तो बाम्हन-ठाकुर आप ही चेत जाएंगे।

गूदड़ ने हार मानकर कहा-तो भैया, इतना बूता तो अब मुझमें नहीं रहा कि दिन-भर काम करूं और रात-भर दौड़ लगाऊँ। काम न करूं, तो भोजन कहां से आए-

अमरकान्त ने उसे हिम्मत हारते देखकर सहास मुख से कहा-कितना बड़ा पेट तुम्हारा है दादा, कि सारे दिन काम करना पड़ता है। अगर इतना बड़ा पेट है, तो उसे छोटा करना पड़ेगा।

काशी और पयाग ने देखा कि इस वक्त सबके ऊपर फटकार पड़ रही है तो वहां से खिसक गए।

पाठशाला का समय हो गया था। अमरकान्त अपनी कोठरी में किताब लेने गया, तो देखा मुन्नी दूध लिए खड़ी है। बोला-मैंने तो कह दिया था, मैं दूध न पिऊंगा, फिर क्यों लाई-

आज कई दिनों से मुन्नी अमर के व्यवहार में एक प्रकार की शुष्कता का अनुभव कर रही थी। उसे देखकर अब मुख पर उल्लास की झलक नहीं आती। उससे अब बिना विशेष प्रयोजन के बोलता भी कम है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे भागता है। इसका कारण वह कुछ नहीं समझ सकती। यह कांटा उसके मन में कई दिन से खटक रहा है। आज वह इस कांटे को निकाल डालेगी।

उसने अविचलित भाव से कहा-क्यों नहीं पिओगे, सुनूं-

अमर पुस्तकों का एक बंडल उठाता हुआ बोला-अपनी इच्छा है। नहीं पीता-तुम्हें मैं कष्ट नहीं देना चाहता।

मुन्नी ने तिरछी आंखों से देखा-यह तुम्हें कब से मालूम हुआ है कि तुम्हारे लिए दूध लाने में मुझे बहुत कष्ट होता है- और अगर किसी को कष्ट उठाने ही में सुख मिलता हो तो-

अमर ने हारकर कहा-अच्छा भाई, झगड़ा न करो, लाओ पी लूं।

एक ही सांस में सारा दूध कड़वी दवा की तरह पीकर अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने द्वार छोड़कर कहा-बिना अपराध के तो किसी को सजा नहीं दी जाती।

अमर द्वार पर ठिठककर बोला-तुम तो जाने क्या बक रही हो- मुझे देर हो रही है।

मुन्नी ने विरक्त भाव धारण किया-तो मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूं, जाते क्यों नहीं-

अमर कोठरी से बाहर पांव न निकाल सका।

मुन्नी ने फिर कहा-क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि मेरा तुम्हारे ऊपर कोई अधिकार नहीं है- तुम आज चाहो तो कह सकते हो खबरदार, मेरे पास मत आना। और मुंह से चाहे न कहते हो पर व्यवहार से रोज ही कह रहे हो। आज कितने दिनों से देख रही हूं लेकिन बेहयाई करके आती हूं, बोलती हूं, खुशामद करती हूं। अगर इस तरह आंखें फेरनी थीं, तो पहले ही से उस तरह क्यों न रहे लेकिन मैं क्या बकने लगी- तुम्हें देर हो रही है, जाओ।

अमरकान्त ने जैसे रस्सी तुड़ाने का जोर लगाकर कहा-तुम्हारी कोई बात मेरी समझ नहीं आ रही है मुन्नी मैं तो जैसे पहले रहता था, वैसे ही अब भी रहता हूं। हां, इधर काम अधिक होने से ज्यादा बातचीत का अवसर नहीं मिलता।

मुन्नी ने आंखें नीची करके गूढ़ भाव से कहा-तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूं, लेकिन वह बात नहीं है। तुम्हें भ्रम हो रहा है।

अमरकान्त ने आश्चर्य से कहा-तुम तो पहेलियों में बातें करने लगीं।

मुन्नी ने उसी भाव से जवाब दिया-आदमी का मन फिर जाता है, तो सीधी बातें भी पहेली-सी लगती हैं।

फिर वह दूध का खाली कटोरा उठाकर जल्दी से चली गई।

अमरकान्त का हृदय मसोसने लगा। मुन्नी जैसे सम्मोहन-शक्ति से उसे अपनी ओर खींचने लगी। 'तुम्हारे मन की बात

मैं समझ रही हूँ, लेकिन वह बात नहीं है। तुम्हें भ्रम हो रहा है।' यह वाक्य किसी गहरे खड्ड की भांति उसके हृदय को भयभीत कर रहा था। उसमें उतरते दिल कांपता था, रास्ता उसी खड्ड में से जाता था।

वह न जाने कितनी देर अचेत-सा खड़ा रहा। सहसा आत्मानन्द ने पुकारा-क्या आज शाला बंद रहेगी-

तीन

इस इलाके के जमींदार एक महन्तजी थे। कारकून और मुख्तार उन्हीं के चेले-चापड़ थे। इसलिए लगान बराबर वसूल होता जाता था। ठाकुरद्वारे में कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता था। कभी ठाकुरजी का जन्म है, कभी ब्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल-विहार है। असामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी भेंट-न्योछावर, पूजा-चढ़ावा आदि नामों से दस्तूरी चुकानी पड़ती थी लेकिन धर्म के मुआमले में कौन मुंह खोलता- धर्म-संकट सबसे बड़ा संकट है। फिर इलाके के काश्तकार सभी नीच जातियों के लोग थे। गांव पीछे दो-चार घर ब्राह्मण-क्षत्रियों के थे भी उनकी सहानुभूति असामियों की ओर न होकर महन्तजी की ओर थी। किसी-न-किसी रूप में वे सभी महन्तजी के सेवक थे। असामियों को प्रसन्न रखना पड़ता था। बेचारे एक तो गरीबी के बोझ से दबे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जानें न कानून महन्तजी जितना चाहें इजाफा करें, जब चाहें बेदखल करें, किसी में बोलने का साहस न था। अक्सर खेतों का लगान इतना बढ़ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी न पहुंचती थी किंतु लोग भाग्य को रोकर, भूखे-नंगे रहकर, कुत्तों की मौत मरकर, खेत जोतते जाते थे। करें क्या- कितनों ही ने जाकर शहरों में नौकरी कर ली थी। कितने ही मजदूरी करने लगे थे। फिर भी असामियों की कमी न थी। कृषि-प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी में अपना सर्वस्व खोकर विदेश जाता है, वहां से धन कमाकर लाता है और फिर गृहस्थी करता है। मान-प्रतिष्ठा का मोह औरों की भांति उसे घेरे रहता है। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थ ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल-बाल कर्ज से बांधा हो, लेकिन द्वार पर दो-चार बैल बंधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में तीस सौ साठ दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर रातें काटनी पड़ें, बेबसी से जीना और बेबसी से मरना पड़े, कोई चिंता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।

लेकिन इस साल अनायास ही जिसों का भाव गिर गया जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बेचकर लगान दे देता था लेकिन जब दो और तीन की जिस एक में बिके तो किसान क्या करे- कहां से लगान दे, कहां से दस्तूरियां दे, कहां से कर्ज चुकाए- विकट समस्या आ खड़ी हुई और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रांत, सारे देश, यहां तक कि सारे संसार में यही मंदी थी चार सेर का गुड़ कोई दस सेर में भी नहीं पूछता। आठ सेर का गेहूं डेढ़ रुपये मन में भी महंगा है। तीस रुपये मन का कपास दस रुपये में जाता है, सोलह रुपये मन का सन चार रुपयों में। किसानों ने एक-एक दाना बेच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा लेकिन यह सब करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके और ठाकुरद्वारे में वही उत्सव थे, वही जल-विहार थे। नतीजा यह हुआ कि हलके में हाहाकार मच गया। इधर कुछ दिनों से स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त के उद्योग से इलाके में विद्या का कुछ प्रचार हो रहा था और कई गांवों में लोगों ने दस्तूरी देना बंद कर दिया था। महन्तजी के प्यादे और कारकून पहले ही से जले बैठे थे। यों तो दाल न गलती थी। बकाया लगान ने उन्हें अपने दिल का गुबार निकालने का मौका दे दिया।

एक दिन गंगा-तट पर इस समस्या पर विचार करने के लिए एक पंचायत हुई। सारे इलाके से स्त्री-पुरुष जमा हुए मानो

किसी पर्व का स्नान करने आए हों। स्वामी आत्मानन्द सभापति चुन गए।

पहले भोला चौधरी खड़े हुए। वह पहले किसी अफसर के कोचवान थे। अब नए साल से फिर खेती करने लगे थे। लंबी नाक, काला रंग, बड़ी-बड़ी मूंछें और बड़ी-सी पगड़ी। मुंह पगड़ी में छिप गया था। बोले-पंचो, हमारे ऊपर जो लगान बांधा हुआ है वह तेजी के समय का है। इस मंदी में वह लगान देना हमारे काबू से बाहर है। अबकी अगर बैल-बछिया बेचकर दे भी दें तो आगे क्या करेंगे- बस हमें इसी बात का तसफिया करना है। मेरी गुजारिस तो यही है कि हम सब मिलकर महन्त महाराज के पास चलें और उनसे अरज-माईज करें। अगर वह न सुनें तो हाकिम जिला के पास चलना चाहिए। मैं औरों की नहीं कहता। मैं गंगा माता की कसम खाके कहता हूं कि मेरे घर में छटांक भर भी अन्न नहीं है, और जब मेरा यह हाल है, तो और सभी का भी यही हाल होगा। उधर महन्तजी के यहां वही बहार है। अभी परसों एक हजार साधुओं को आम की पंगत दी गई। बनारस और लखनऊ से कई डिब्बे आमों के आए हैं। आज सुनते हैं फिर मलाई की पंगत है। हम भूखों मरते हैं, वहां मलाई उड़ती है। उस पर हमारा रक्त चूसा जा रहा है। बस, यही मुझे पंचों से कहना है।

गूदड़ ने धांसी हुई आंखें फेरकर कहा-महन्तजी हमारे मालिक हैं, अन्नदाता हैं, महात्मा हैं। हमारा दुःख सुनकर जरूर-से-जरूर उन्हें हमारे ऊपर दया आएगी इसलिए हमें भोला चौरी की सलाह मंजूर करनी चाहिए। अमर भैया हमारी ओर से बातचीत करेंगे। हम और कुछ नहीं चाहते। बस, हमें और हमारे बाल-बच्चों को आधा-आधा सेर रोजाना के हिसाब से दिया जाए। उपज जो कुछ हो वह सब महन्तजी ले जाएं। हम घी-दूध नहीं मांगते, दूध-मलाई नहीं मांगते। खाली आध सेर मोटा अनाज मांगते हैं। इतना भी न मिलेगा, तो हम खेती न करेंगे। मजूरी और बीज किसके घर से लाएंगे। हम खेती छोड़ देंगे, इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

सलोनी ने हाथ चमकाकर कहा-खेत क्यों छोड़ें- बाप-दादों की निसानी है। उसे नहीं छोड़ सकते। खेत पर परान दे दूंगी। एक था, तब दो हुए, तब चार हुए, अब क्या धरती सोना उगलेगी।

अलगू कोरी बिज्जू-सी आंखें निकालकर बोला-भैया, मैं तो बेलाग कहता हूं, महन्त के पास चलने से कुछ न होगा। राजा ठाकुर हैं। कहीं क्रोध आ गया, तो पिटवाने लगेंगे। हाकिम के पास चलना चाहिए। गोरों में फिर भी दया है।

आत्मानन्द ने सभी का विरोध किया-मैं कहता हूं, किसी के पास जाने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारी थाली की रोटी तुमसे कहे कि मुझे न खाओ, तो तुम मानोगे-

चारों तरफ से आवाजें आईं-कभी नहीं मान सकते।

'तो तुम जिनकी थाली की रोटियां हो वह कैसे मान सकते हैं।'

बहुत-सी आवाजों ने समर्थन किया-कभी नहीं मान सकते हैं।

'महन्तजी को उत्सव मनाने को रुपये चाहिए। हाकिमों को बड़ी-बड़ी तलब चाहिए। उनकी तलब में कमी नहीं हो सकती। वे अपनी शान नहीं छोड़ सकते। तुम मरो या जियो उनकी बला से। वह तुम्हें क्यों छोड़ने लगे?'

बहुत-सी आवाजों ने हामी भरी-कभी नहीं छोड़ सकते।

अमरकान्त स्वामीजी के पीछे बैठा हुआ था। स्वामीजी का यह रुख देखकर घबराया लेकिन सभापति को कैसे रोके- यह तो वह जानता था, यह गर्म मिजाज का आदमी है लेकिन इतनी जल्दी इतना गर्म हो जाएगा, इसकी उसे आशा न

थी। आखिर यह महाशय चाहते क्या हैं-

आत्मानन्द गरजकर बोले-तो अब तुम्हारे लिए कौन-सा मार्ग है- अगर मुझसे पूछते हो, और तुम लोग आज प्रण करो कि उसे मानोगे, तो मैं बता सकता हूँ, नहीं तुम्हारी इच्छा।

बहुत-सी आवाजें आई-जरूर बतलाइए स्वामीजी, बतलाइए।

जनता चारों ओर से खिसककर और समीप आ गई। स्वामीजी उनके हृदय को स्पर्श कर रहे हैं, यह उनके चेहरों से झलक रहा था। जन-रुचि सदैव उग्र की ओर होती है।

आत्मानन्द बोले-तो आओ, आज हम सब महन्तजी का मकान और ठाकुरद्वारा घेर लें और जब तक वह लगान बिलकुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दें।

बहुत-सी आवाजें आई-हम लोग तैयार हैं।

'खूब समझ लो कि वहां तुम पान-फूल से पूजे न जाओगे।'

'कुछ परवाह नहीं। मर तो रहे हैं, सिसक-सिसककर क्यों मरें।'

'तो इसी वक्त चलें। हम दिखा दें कि?'

सहसा अमर ने खड़े होकर प्रदीप्त नेत्रों से कहा-ठहरो।

समूह में सन्नाटा छा गया। जो जहां था, वहीं खड़ा रह गया।

अमर ने छाती ठोंककर कहा-जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो, वह उधार का रास्ता नहीं है-सर्वनाश का रास्ता है। तुम्हारा बैल अगर बीमार पड़ जाए जो तुम उसे जोतोगे-

किसी तरफ से कोई आवाज न आई।

'तुम पहले उसकी दवा करोगे, और जब तक वह अच्छा न हो जाएगा, उसे न जोतोगे क्योंकि तुम बैल को मारना नहीं चाहते उसके मरने से तुम्हारे खेत परती पड़ जाएंगे।'

गूदड़ बोले-बहुत ठीक कहते हो, भैया।

'घर में आग लगने पर हमारा क्या धर्म है- क्या हम आग को फैलने दें और घर की बची-बचाई चीजें भी लाकर उसमें डाल दें?'

गूदड़ ने कहा-कभी नहीं। कभी नहीं।

'क्यों- इसलिए कि हम घर को जलाना नहीं, बनाना चाहते हैं। हमें उस घर में रहना है। उसी में जीना है। यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नहीं पड़ी है। सारे देश में यही हाहाकार मचा हुआ है। हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ हमें भी चलना है।'

उसने एक लंबा भाषण किया पर वही जनता जो उसका भाषण सुनकर मस्त हो जाती थी, आज उदासीन बैठी थी। उसका सम्मान सभी करते थे, इसलिए कोई ऊधाम न हुआ, कोई बमचख न मचा पर जनता पर कोई असर न हुआ। आत्मानन्द इस समय जनता का नायक बना हुआ था।

सभा बिना कुछ निश्चय किए उठ गई, लेकिन बहुमत किस तरफ है, यह किसी से छिपा न था।

चार

अमर घर लौटा, तो बहुत हताश था। अगर जनता को शांत करने का उपाय न किया गया, अवश्य उपद्रव हो जाएगा। उसने महन्तजी से मिलने का निश्चय किया। इस समय उसका चित्त इतना उदास था कि एक बार जी में आया, यहां से सब छोड़-छाड़कर चला जाए। उसे अभी तक अनुभव न हुआ था कि जनता सदैव तेज मिजाजों के पीछे चलती है। वह न्याय और धर्म, हानि-लाभ, अहिंसा और त्याग सब कुछ समझाकर भी आत्मानन्द के डुंके हुए जादू को उतार न सका। आत्मानन्द इस वक्त यहां मिल जाते, तो दोनों मित्रों में जरूर लड़ाई हो जाती लेकिन वह आज गायब थे। उन्हें आज घोड़े का आसन मिल गया था। किसी गांव में संगठन करने चले गए थे।

आज अमर का कितना अपमान हुआ। किसी ने उसकी बातों पर कान तक न दिया। उनके चेहरे कह रहे थे, तुम क्या बकते हो, तुमसे हमारा उधार न होगा। इस घाव पर कोमल शब्दों के मरहम की जरूरत थी-कोई उन्हें लिटाकर उनके घाव को गाहे से धोए, उस पर शीतल लेप करे।

मुन्नी रस्सी और कलसा लिए हुए निकली और बिना उसकी ओर ताके कुएं की ओर चली गई। उसने पुकारा-सुनती जाओ, मुन्नी पर मुन्नी ने सुनकर भी न सुना। जरा देर बाद वह कलसा लिए हुए लौटी और फिर उसके सामने से सिर झुकाए चली गई। अमर ने फिर पुकारा-मुन्नी, सुनो एक बात कहनी है। पर अबकी भी वह न रुकी। उसके मन में अब संदेह न था।

एक क्षण में मुन्नी फिर निकली और सलोनी के घर जा पहुंची। वह मदरसे के पीछे एक छोटी-सी मंडैया डालकर रहती थी। चटाई पर लेटी एक भजन गा रही थी। मुन्नी ने जाकर पूछा-आज कुछ पकाया नहीं काकी, यों ही सो रही हो-

सलोनी ने उठकर कहा-खा चुकी बेटा, दोपहर की रोटियां रखी हुई थीं।

मुन्नी ने चौंके की ओर देखा। चौंका साफ लिपा-पुता पड़ा था। बोली-काकी, तुम बहाना कर रही हो। क्या घर में कुछ है ही नहीं- अभी तो आते देर नहीं हुई, इतनी जल्द खा कहाँ से लिया-

'तू तो पतियाती नहीं है, बहू भूख लगी थी, आते-ही-आते खा लिया। बर्तन धो धाकर रख दिए। भला तुमसे क्या छिपाती- कुछ न होता, तो मांग न लेती?'

'अच्छा, मेरी कसम खाओ।'

काकी ने हंसकर कहा-हां, अपनी कसम खाती हूं, खा चुकी।

मुन्नी दुखित होकर बोली-तुम मुझे गैर समझती हो, काकी- जैसे मुझे तुम्हारे मरने-जीने से कुछ मतलब ही नहीं। अभी तो तुमने तिलहन बेचा था, रुपये क्या किए-

सलोनी सिर पर हाथ रखकर बोली-अरे भगवान् तिलहन था ही कितना कुल एक रुपया तो मिला। वह कल प्यादा ले गया। घर में आग लगाए देता था। क्या करती, निकालकर फेंक दिया। उस पर अमर भैया कहते हैं-महन्तजी से फरियाद करो। कोई नहीं सुनेगा, बेटा मैं कहे देती हूं।

मुन्नी बोली-अच्छा, तो चलो मेरे घर खा लो।

सलोनी ने सजल नेत्र होकर कहा-तू आज खिला देगी बेटा, अभी तो पूरा चौमासा पड़ा हुआ है। आजकल तो कहीं घास भी नहीं मिलती। भगवान् न जाने कैसे पार लगाएंगे- घर में अन्न का एक दाना भी नहीं है। डांडी अच्छी होती, तो बाकी देके चार महीने निबाह हो जाता। इस डांडी में आग लगे, आधी बाकी भी न निकली। अमर भैया को तू समझाती नहीं, स्वामीजी को बड़ने नहीं देते।

मुन्नी ने मुंह फेरकर कहा-मुझसे तो आजकल रूठे हुए हैं, बोलते ही नहीं। काम-धंधे से फुरसत ही नहीं मिलती। घर के आदमी से बातचीत करने को भी फुरसत चाहिए। जब फटेहाल आए थे तब फुरसत थी। यहां जब दुनिया जानने लगी, नाम हुआ, बड़े आदमी बन गए, तो अब फुरसत नहीं है।

सलोनी ने विस्मय भरी आंखों से मुन्नी को देखा-क्या कहती है बहू, वह तुझसे रूठे हुए हैं- मुझे तो विश्वास नहीं आता। तुझे धोखा हुआ है। बेचारा रात-दिन तो दौड़ता है, न मिली होगी फुरसत। मैंने तुझे जो असीस दिया है, वह पूरा होके रहेगा, देख लेना।

मुन्नी अपनी अनुदारता पर सकुचाती हुई बोली-मुझे किसी की परवाह नहीं है, काकी जिसे सौ बार गरज पड़े बोले, नहीं न बोले। वह समझते होंगे-मैं उनके गले पड़ी जा रही हूं। मैं तुम्हारे चरण छूकर कहती हूं काकी, जो यह बात कभी मेरे मन में आई हो। मैं तो उनके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूं। हां, इतना चाहती हूं कि वह मुझसे मन से बोलें, जो कुछ थोड़ी बहुत सेवा करूं, उसे मन से लें। मेरे मन में बस इतनी ही साधा है कि मैं जल चढ़ाती जाऊं और वह चढ़वाते जाएं और कुछ नहीं चाहती।

सहसा अमर ने पुकारा। सलोनी ने बुलाया-आओ भैया अभी बहू आ गई, उसी से बतिया रही हूं।

अमर ने मुन्नी की ओर देखकर तीखे स्वर में कहा-मैंने तुम्हें दो बार पुकारा मुन्नी, तुम बोलीं क्यों नहीं-

मुन्नी ने मुंह फेरकर कहा-तुम्हें किसी से बोलने की फुरसत नहीं है। तो कोई क्यों जाए तुम्हारे पास- तुम्हें बड़े-बड़े काम करने पड़ते हैं, तो औरों को भी तो अपने छोटे-छोटे काम करने ही पड़ते हैं।

अमर पत्नीव्रत की धुन में मुन्नी से खींचा रहने लगा था। पहले वह चट्टान पर था, सुखदा उसे नीचे से खींच रही थी। अब सुखदा टीले के शिखर पर पहुंच गई और उसके पास पहुंचने के लिए उसे आत्मबल और मनोयोग की जरूरत थी। उसका जीवन आदर्श होना चाहिए, किंतु प्रयास करने पर भी वह सरलता और श्रद्धा की इस मूर्ति को दिल से न निकाल सकता था। उसे ज्ञात हो रहा था कि आत्मोन्नति के प्रयास में उसका जीवन शुष्क, निरीह हो गया है। उसने मन में सोचा, मैंने तो समझा था हम दोनों एक-दूसरे के इतने समीप आ गये हैं कि अब बीच में किसी भ्रम की गुंजाइश नहीं रही। मैं चाहे यहां रहूं, चाहे काले कोसों चला जाऊं, लेकिन तुमने मेरे हृदय में जो दीपक जला दिया है, उसकी ज्योति जरा भी मंद न पड़ेगी।

उसने मीठे तिरस्कार से कहा-मैं यह मानता हूं मुन्नी, कि इधर काम अधिक रहने से तुमसे कुछ अलग रहा लेकिन मुझे आशा थी कि अगर चिंताओं से झुंझलाकर मैं तुम्हें दो-चार कड़वे शब्द भी सुना दूं, तो तुम मुझे क्षमा करोगी। अब मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी।

मुन्नी ने उसे कातर नेत्रों से देखकर कहा-हां लाला, वह तुम्हारी भूल थी। दरिद्र को सिंहासन पर भी बैठा दो, तब भी उसे अपने राजा होने का विश्वास न आएगा। वह उसे सपना ही समझेगा। मेरे लिए भी यही सपना जीवन का आधार

है। मैं कभी जागना नहीं चाहती। नित्य यही सपना देखती रहना चाहती हूँ। तुम मुझे थपकियां देते जाओ, बस मैं इतना ही चाहती हूँ। क्या इतना भी नहीं कर सकते- क्या हुआ, आज स्वामीजी से तुम्हारा झगड़ा क्यों हो गया-

सलोनी अभी तो आत्मानन्द की तारीफ कर रही थी। अब अमर की मुंह देखी कहने लगी-भैया ने तो लोगों का समझाया था कि महन्त के पास चलो। इसी पर लोग बिगड़ गए। पूछो, और तुम कर ही क्या सकते हो। महन्तजी पिटवाने लगें, तो भागने की राह न मिले।

मुन्नी ने इसका समर्थन किया-महन्तजी धार्मात्मा आदमी हैं। भला लोग भगवान् के मंदिर को घेरते, तो कितना अपजस होता। संसार भगवान् का भजन करता है। हम चलें उनकी पूजा रोकने। न जाने स्वामीजी को यह सूझी क्या, और लोग उनकी बात मान गए। कैसा अंधेर है।

अमर ने चित्त में शांति का अनुभव किया। स्वामीजी से तो ज्यादा समझदार ये अपढ़ स्त्रियां हैं। और आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। ऐसे ही मूर्ख आपको भक्त मिल गए।

उसने प्रसन्न होकर कहा-उस नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता था, काकी- लोग मंदिर को घेरने जाते, तो फौजदारी हो जाती। जरा-जरा सी बात में तो आजकल गोलियां चलती हैं।

सलोनी ने भयभीत होकर कहा-तुमने बहुत अच्छा किया भैया, जो उनके साथ न हुए, नहीं खून-खच्चर हो जाता।

मुन्नी आर्द्र होकर बोली-मैं तो उनके साथ कभी न जाने देती, लाला हाकिम संसार पर राज करता है तो क्या रैयत का दुःख-दर्द न सुनेगा- स्वामीजी आवेंगे, तो पूछूंगी।

आग की तरह जलता हुआ भाव सहानुभूति और सहृदयता से भरे हुए शब्दों से शीतल होता जान पड़ा। अब अमर कल अवश्य महन्तजी की सेवा में जाएगा। उसके मन में अब कोई शंका, कोई दुविधा नहीं है।

पांच

अमर गूदड़ चौधरी के साथ महन्त आशाराम गिरि के पास पहुंचा। संध्या का समय था। महन्तजी एक सोने की कुर्सी पर बैठे हुए थे, जिस पर मखमली गद्दा था। उनके इर्द-गिर्द भक्तों की भीड़ लगी हुई थी, जिसमें महिलाओं की संख्या ही अधिक थी। सभी धुले हुए संगमरमर के फर्श पर बैठी हुई थी। पुरुष दूसरी ओर बैठे थे। महन्तजी पूरे छः फीट के विशालकाय सौम्य पुरुष थे। अवस्था कोई पैंतीस वर्ष की थी। गोरा रंग, दुहरी देह, तेजस्वी मूर्ति, काषाय वस्त्र तो थे, किन्तु रेशमी। वह पांच लटकाए बैठे हुए थे। भक्त लोग जाकर उनके चरणों को आंखों से लगाते थे, अमर अंदर गया, पर वहां उसे कौन पूछता- आखिर जब खड़े-खड़े आठ बज गए, तो उसने महन्तजी के समीप जाकर कहा-महाराज, मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है।

महन्तजी ने इस तरह उसकी ओर देखा, मानो उन्हें आंखें फेरने में भी कष्ट है।

उनके समीप एक दूसरा साधु खड़ा था। उसने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर पूछा-कहां से आते हो-

अमर ने गांव का नाम बताया।

हुक्म हुआ, आरती के बाद आओ।

आरती में तीन घंटे की देर थी। अमर यहां कभी न आया था। सोचा, यहां की सैर ही कर लें। इधर-उधर घूमने लगा।

यहां से पश्चिम तरफ तो विशाल मंदिर था। सामने पूरब की ओर सिंहद्वार, दाहिने-बाएं दो दरवाजे और भी थे। अमर दाहिने दरवाजे से अंदर घुसा, तो देखा चारों तरफ चौड़े बरामदे हैं और भंडारा हो रहा है। कहीं बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों में पूड़ियां-कचौड़ियां बन रही हैं। कहीं भांति-भांति की शाक-भाजी चढ़ी हुई है कहीं दूध उबल रहा है कहीं मलाई निकाली जा रही है। बरामदे के पीछे, कमरे में खा? सामग्री भरी हुई थी। ऐसा मालूम होता था, अनाज, शाक-भाजी, मेवे, फल, मिठाई की मंडियां हैं। एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था। उस मौसम में परवल कितने महंगे होते हैं पर यहां वह भूसे की तरह भरा हुआ था। अच्छे-अच्छे घरों की महिलाएं भक्ति-भाव से व्यंजन पकाने में लगी हुई थीं। ठाकुरजी के ब्यालू की तैयारी थी। अमर यह भंडार देखकर दंग रह गया। इस मौसम में यहां बीसों झाबे अंगूर भरे थे।

अमर यहां से उत्तर तरफ के द्वार में घुसा, तो यहां बाजार-सा लगा देखा। एक लंबी कतार दर्जियों की थी, जो ठाकुरजी के वस्त्र सी रहे थे। कहीं जरी के काम हो रहे थे, कहीं कारचोबी की मसनदें और फावतकिए बनाए जा रहे थे। एक कतार सोनारों की थी, जो ठाकुरजी के आभूषण बना रहे थे, कहीं जड़ाई का काम हो रहा था, कहीं पालिश किया जाता था, कहीं पटवे गहने गूँथ रहे थे। एक कमरे में दस-बारह मुस्टंडे जवान बैठे चंदन सगड़ रहे थे। सबों के मुंह पर ढाटे बंधो हुए थे। एक पूरा कमरा इत्र, तेल और अगरबत्तियों से भरा हुआ था। ठाकुरजी के नाम पर कितना अपव्यय हो रहा है, यही सोचता हुआ अमर यहां से फिर बीच वाले प्रांगण में आया और सदर द्वार से बाहर निकला।

गूदड़ ने पूछा-बड़ी देर लगाई। कुछ बातचीत हुई-

अमर ने हंसकर कहा-अभी तो केवल दर्शन हुए हैं, आरती के बाद भेंट होगी। यह कहकर उसने जो देखा था, वह विस्तारपूर्वक बयान किया।

गूदड़ ने गर्दन हिलाते हुए कहा-भगवान् का दरबार है। जो संसार को पालता है, उसे किस बात की कमी- सुना तो हमने भी है लेकिन कभी भीतर नहीं गए कि कोई कुछ पूछने-पाछने लगे, तो निकाले जायें। हां, घुड़साल और गऊशाला देखी है, मन चाहे तो तुम भी देख लो।

अभी समय बहुत बाकी था। अमर गऊशाला देखने चला। मंदिर के दक्खिन में पशुशालाएं थीं। सबसे पहले पीलखाने में घुसे। कोई पच्चीस-तीस हाथी आंगन में जंजीरों से बंधो खड़े थे। कोई इतना बड़ा कि पूरा पहाड़, कोई इतना मोटा, जैसे भैंस। कोई झूम रहा था, कोई सूंड घुमा रहा था, कोई बरगद के डाल-पात चबा रहा था। उनके हौदे, झूले, अंबारियां, गहने सब अलग गोदाम में रखे हुए थे। हरेक हाथी का अपना नाम, अपना सेवक, अपना मकान अलग था। किसी को मन-भर रातिब मिलता था, किसी को चार पसेरी। ठाकुरजी की सवारी में जो हाथी था, वही सबसे बड़ा था। भगत लोग उसकी पूजा करने आते थे। इस वक्त भी मालाओं का ढेर उसके सिर पर पड़ा हुआ था। बहुत-से फूल उसके पैरों के नीचे थे।

यहां से घुड़साल में पहुंचे। घोड़ों की कतारें बांधी हुई थीं, मानो सवारों की फौज का पड़ाव हो। पांच सौ घोड़ों से कम न थे, हरेक जाति के, हरेक देश के। कोई सवारी का कोई शिकार का, कोई बग्घी का, कोई पोलो का। हरेक घोड़े पर दो-दो आदमी नौकर थे। उन्हें रोज बादाम और मलाई दी जाती थी।

गऊशाला में भी चार-पांच सौ गाएं-भैंसें थीं बड़े-बड़े मटके ताजे दूध से भरे रखे थे। ठाकुरजी आरती के पहले स्नान करेंगे। पांच-पांच मन दूध उनके स्नान को तीन बार रोज चाहिए, भंडार के लिए अलग।

अभी यह लोग इधर-उधर घूम ही रहे थे कि आरती शुरू हो गई। चारों तरफ से लोग आरती करने को दौड़ पड़े।

गूदड़ ने कहा-तुमसे कोई पूछता-कौन भाई हो, तो क्या बताते-

अमर ने मुस्कराकर कहा-वैश्य बताता।

'तुम्हारी तो चल जाती क्योंकि यहां तुम्हें लोग कम जानते हैं, मुझे तो लोग रोज ही हाथ में चरसों बेचते देखते हैं, पहचान लें, तो जीता न छोड़ें। अब देखो भगवान् की आरती हो रही है और हम भीतर नहीं जा सकते, यहां के पंडे-पुजारियों के चरित्र सुनो, तो दांतों तले उंगली दबा लो। पर वे यहां के मालिक हैं, और हम भीतर कदम नहीं रख सकते। तुम चाहे जाकर आरती ले लो। तुम सूरत से भी तो ब्राह्मण जंचते हो। मेरी तो सूरत ही चमार-चमार पुकार रही है।'

अमर की इच्छा तो हुई कि अंदर जाकर तमाशा देखे पर गूदड़ को छोड़कर न जा सका। कोई आधा घंटे में आरती समाप्त हुई और उपासक लौटकर अपने-अपने घर गए, तो अमर महन्तजी से मिलने चला। मालूम हुआ, कोई रानी साहब दर्शन कर रही हैं। वहीं आंगन में टहलता रहा।

आधा घंटे के बाद उसने फिर साधु-द्वारपाल से कहा, तो पता चला, इस वक्त नहीं दर्शन हो सकते। प्रातःकाल आओ।

अमर को क्रोध तो ऐसा आया कि इसी वक्त महन्तजी को फटकारे पर जब्त करना पड़ा। अपना-सा मुंह लेकर बाहर चला आया।

गूदड़ ने यह समाचार सुनकर कहा-दरबार में भला हमारी कौन सुनेगा-

'महन्तजी के दर्शन तुमने कभी किए हैं?'

'मैंने भला मैं कैसे करता- मैं कभी नहीं आया।'

नौ बज रहे थे, इस वक्त घर लौटना मुश्किल था। पहाड़ी रास्ते, जंगली जानवरों का खटका, नदी-नालों का उतार। वहीं रात काटने की सलाह हुई। दोनों एक धर्मशाला में पहुंचे और कुछ खा-पीकर वहीं पड़ रहने का विचार किया। इतने में दो साधु भगवान् का ब्यालू बेचते हुए नजर आए। धर्मशाला के सभी यात्री लेने दौड़े। अमर ने भी चार आने की एक पत्तल ली। पूरियां, हलवे, तरह-तरह की भांजियां, अचार-चटनी, मुरब्बे, मलाई, दही इतना सामान था कि अच्छे दो खाने वाले तस हो जाते। यहां चूल्हा बहुत कम घरों में जलता था। लोग यही पत्तल ले लिया करते थे। दोनों ने खूब पेट-भर खाया और पानी पीकर सोने की तैयारी कर रहे थे कि एक साधु दूध बेचने आया-शयन का दूध ले लो। अमर की इच्छा तो न थी पर कौतूहल से उसने दो आने का दूध ले लिया। पूरा एक सेर था, गाढ़ा, मलाईदार उसमें से केसर और कस्तूरी की सुगंध उड़ रही थी। ऐसा दूध उसने अपने जीवन में कभी न पिया था।

बेचारे बिस्तर तो लाए न थे, आधी-आधी धोतियां बिछाकर लेटे।

अमर ने विस्मय से कहा-इस खर्च का कुछ ठिकाना है।

गूदड़ भक्ति-भाव से बोला-भगवान् देते हैं और क्या उन्हीं की महिमा है। हजार-दो हजार यात्री नित्य आते हैं। एक-एक सेठिया दस-दस, बीस-बीस हजार की थैली चढ़ाता है। इतना खरचा करने पर भी करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं।

'देखें कल क्या बातें होती हैं?'

'मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि कल भी दर्शन न होंगे।'

दोनों आदमियों ने कुछ रात रहे ही उठकर स्नान किया और दिन निकलने के पहले डयोढ़ी पर जा पहुंचे। मालूम हुआ, महन्तजी पूजा पर हैं।

एक घंटा बाद फिर गए, तो सूचना मिली, महन्तजी कलेऊ पर हैं।

जब वह तीसरी बार नौ बजे गया, तो मालूम हुआ, महन्तजी घोड़ों का मुआइना कर रहे हैं। अमर ने झुंझलाकर द्वारपाल से कहा-तो आखिर हमें कब दर्शन होंगे-

द्वारपाल ने पूछा-तुम कौन हो-

'मैं उनके इलाके के विषय में कुछ कहने आया हूं।'

'तो कारकुन के पास जाओ। इलाके का काम वही देखते हैं।'

अमर पूछता हुआ कारकुन के दफ्तर में पहुंचा, तो बीसों मुनीम लंबी-लंबी बही खोले लिख रहे थे। कारकुन महोदय मसनद लगाए हुक्का पी रहे थे।

अमर ने सलाम किया।

कारकुन साहब ने दाढ़ी पर हाथ फेरकर पूछा-अर्जी कहां है-

अमर ने बगलें झांककर कहा-अर्जी तो मैं नहीं लाया।

'तो फिर यहां क्या करने आए?'

'मैं तो श्रीमान् महन्तजी से कुछ अर्ज करने आया था।'

'अर्जी लिखकर लाओ।'

'मैं तो महन्तजी से मिलना चाहता हूं।'

'नजराना लाए हो?'

'मैं गरीब आदमी हूं, नजराना कहां से लाऊं?'

'इसलिए कहता हूं, अर्जी लिखकर लाओ। उस पर विचार होगा। जो कुछ हुक्म होगा, सुना दिया जाएगा।'

'तो कब हुक्म सुनाया जाएगा?'

'जब महन्तजी की इच्छा हो।'

'महन्तजी को कितना नजराना चाहिए?'

'जैसी श्रद्धा हो। कम-से-कम एक अशर्फी।'

'कोई तारीख बता दीजिए, तो मैं हुक्म सुनने आऊं। यहां रोज कौन दौड़ेगा?'

'तुम दौड़ोगे और कौन दौड़ेगा- तारीख नहीं बताई जा सकती।'

अमर ने बस्ती में जाकर विस्तार के साथ अर्जी लिखी और उसे कारकुन की सेवा में पेश कर दिया। फिर दोनों घर चले गए।

इनके आने की खबर पाते ही गांव के सैकड़ों आदमी जमा हो गए। अमर बड़े संकट में पड़ा। अगर उनसे सारा वृत्तांत कहता है, तो लोग उसी को उल्लू बनाएंगे-इसलिए बात बनानी पड़ी-अर्जी पेश कर आया हूं। उस पर विचार हो रहा है।

काशी ने अविश्वास के भाव से कहा-वहां महीनों में विचार होगा, तब तक यहां कारिंदे हमें नोच डालेंगे।

अमर ने खिसियाकर कहा-महीनों में क्यों विचार होगा- दो-चार दिन बहुत हैं।

पयाग बोला-यह सब टालने की बातें हैं। खुशी से कौन अपने रुपये छोड़ सकता है।

अमर रोज सबेरे जाता और घड़ी रात गए लौट आता। पर अर्जी पर विचार न होता था। कारकुन, उनके मुहरिरो, यहां तक की चपरासियों की मिन्नत-समाजत करता पर कोई न सुनता था। रात को वह निराश होकर लौटता, तो गांव के लोग यहां उसका परिहास करते।

पयाग कहता-हमने तो सुना था कि रुपये में आठ आने की छूट हो गई।

काशी कहता-तुम झूठे हो। मैंने तो सुना था, महन्तजी ने इस साल पूरी लगान माफ कर दी।

उधर आत्मानन्द हलके में बराबर जनता को भड़का रहे थे। रोज बड़ी-बड़ी किसान-सभाओं की खबरें आती थीं। जगह-जगह किसान-सभाएं बन रही थीं। अमर की पाठशाला भी बंद पड़ी थी। उसे फुरसत ही न मिलती थी, पढ़ाता कौन- रात को केवल मुन्नी अपनी कोमल सहानुभूति से उसके आंसू पोंछती थी।

आखिर सातवें दिन उसकी अर्जी पर हुक्म हुआ कि सामने पेश किया जाय। अमर महन्त के सामने लाया गया। दोपहर का समय था। महन्तजी खसखाने में एक तख्त पर मसनद लगाए लेटे हुए थे। चारों तरफ खस की टट्टियां थीं, जिन पर गुलाब का छिड़काव हो रहा था। बिजली के पंखे चल रहे थे। अंदर इस जेठ के महीने में इतनी ठंडक थी कि अमर को सर्दी लगने लगी।

महन्तजी के मुखमंडल पर दया झलक रही थी। हुक्के का एक कश खींचकर मधुर स्वर में बोले-तुम इलाके ही में रहते हो न- मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि मेरे असामियों की इस समय कष्ट है। क्या सचमुच उनकी दशा यही है, जो तुमने अर्जी में लिखी है-

अमर ने प्रोत्साहित होकर कहा-महाराज, उनकी दशा इससे कहीं खराब है कितने ही घरों में चूल्हा नहीं जलता।

महन्तजी ने आंखें बंद करके कहा-भगवान् यह तुम्हारी क्या लीला है-तो तुमने मुझे पहले ही क्यों न खबर दी- मैं इस फसल की वसूली रोक देता। भगवान् के भंडार में किस चीज की कमी है। मैं इस विषय में बहुत जल्द सरकार से पत्र व्यवहार करूंगा और वहां से जो कुछ जवाब आएगा, वह असामियों को भिजवा दूंगा। तुम उनसे कहो, धैर्य रखें। भगवान् यह तुम्हारी क्या लीला है ।

महन्तजी ने आंखों पर ऐनक लगा ली और दूसरी अर्जियां देखने लगे, तो अमरकान्त भी उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते उसने पूछा-अगर श्रीमान् कारिंदों को हुक्म दे दें कि इस वक्त असामियों को दिक न करें, तो बड़ी दया हो। किसी के पास कुछ नहीं है, पर मार-गाली के भय से बेचारे घर की चीजें बेच-बेचकर लगान चुकाते हैं। कितने ही तो इलाका

छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं।

महन्तजी की मुद्रा कठोर हो गई-ऐसा नहीं होने पाएगा। मैंने कारिंदों को कड़ी ताकीद कर दी है कि किसी असामी पर सख्ती न की जाय। मैं उन सबों से जवाब तलब करूंगा। मैं असामियों का सताया जाना बिलकुल पसंद नहीं करता।

अमर ने झुककर महन्तजी को दंडवत किया और वहां से बाहर निकला, तो उसकी बांछें खिली जाती थीं। वह जल्द-से जल्द इलाके में पहुंचकर यह खबर सुना देना चाहता था। ऐसा तेज जा रहा था, मानो दौड़ रहा है। बीच-बीच में दौड़ भी लगा लेता था, पर सचेत होकर रुक जाता था। लू तो न थी पर धूप बड़ी तेज थी, देह फुंकी जाती थी, फिर भी वह भागा चला जाता था। अब वह स्वामी आत्मानन्द से पूछेगा, कहिए, अब तो आपको विश्वास आया न कि संसार में सभी स्वार्थी नहीं- कुछ धार्मात्मा भी हैं, जो दूसरों का दुःख-दर्द समझते हैं- अब उनके साथ के बेफिक्रों की खबर भी लेगा। अगर उसके पर होते तो उड़ जाता।

संध्या समय वह गांव में पहुंचा तो कितने ही उत्सुक किंतु अविश्वास से भरे नेत्रों ने उसका स्वागत किया।

काशी बोला-आज तो बड़े प्रसन्न हो भैया, पाला मार आए क्या-

अमर ने खाट पर बैठते हुए अकड़कर कहा-जो दिल से काम करेगा, वह पाला मारेगा ही।

बहुत से लोग पूछने लगे-भैया, क्या हुकुम हुआ-

अमर ने डॉक्टर की तरह मरीजों को तसल्ली दी-महन्तजी को तुम लोग व्यर्थ बदनाम कर रहे थे। ऐसी सज्जनता से मिले कि मैं क्या कहूं- कहा-हमें तो कुछ मालूम ही नहीं, पहले ही क्यों न सूचना दी, नहीं तो हमने वसूली बंद कर दी होती। अब उन्होंने सरकार को लिखा है। यहां कारिंदों को भी वसूली की मनाही हो जाएगी।

काशी ने खिसियाकर कहा-देखो, कुछ हो जाय तो जानें।

अमर ने गर्व से कहा-अगर धैर्य से काम लगे, तो सब कुछ हो जाएगा। हुल्लड़ मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डंडे पड़ेंगे।

सलोनी ने कहा-जब मोटे स्वामी मानें।

गूदड़ ने चौधरीपन की ली-मानेंगे कैसे नहीं, उनको मानना पड़ेगा।

एक काले युवक ने, जो स्वामीजी के उग्र भक्तों में था, लज्जित होकर कहा-भैया, जिस लगन से तुम काम करते हो, कोई क्या करेगा।

दूसरे दिन उसी कड़ाई से प्यादों ने डांट-फटकार की लेकिन तीसरे दिन से वह कुछ नर्म हो गए। सारे इलाके में खबर फैल गई कि महन्तजी ने आधी छूट के लिए सरकार को लिखा है। स्वामीजी जिस गांव में जाते थे, वहां लोग उन पर आवाजें कसते। स्वामीजी अपनी रट अब भी लगाए जाते थे। यह सब धोखा है, कुछ होना-हवाना नहीं है, उन्हें अपनी बात की आ पड़ी थी-असामियों की उन्हें इतनी फिक्र न थी, जितनी अपने पक्ष की। अगर आधी छूट का हुकुम आ जाता, तो शायद वह यहां से भाग जाते। इस वक्त तो वह इस वादे को धोखा साबित करने की चेष्टा करते थे, और यद्यपि जनता उनके हाथ में न थी, पर कुछ-न-कुछ आदमी उनकी बातें सुन ही लेते थे। हां, इस कान सुनकर उस कान उड़ा देते।

दिन गुजरने लगे, मगर कोई हुक्म नहीं आया। फिर लोगों में संदेह पैदा होने लगा। जब दो सप्ताह निकल गए, तो अमर सदर गया और वहां सलीम के साथ हाकिम जिला मि. गजनवी से मिला। मि. गजनवी लंबे, दुबले, गोरे शौकीन आदमी थे। उनकी नाक इतनी लंबी और चिबुक इतना गोल था कि हास्य-मूर्ति लगते थे। और थे भी बड़े विनोदी। काम उतना ही करते थे जितना जरूरी होता था और जिसके न करने से जवाब तलब हो सकता था। लेकिन दिल के साफ, उदार, परोपकारी आदमी थे। जब अमर ने गांवों की हालत उनसे बयान की, तो हंसकर बोले-आपके महन्तजी ने फरमाया है, सरकार जितनी मालगुजारी छोड़ दे, मैं उतनी ही लगान छोड़ दूंगा। हैं मुंसिफ मिजाज।

अमर ने शंका की-तो इसमें बेइंसाफी क्या है-

'बेइंसाफी यही है कि उनके करोड़ों रुपये बैंक में जमा हैं, सरकार पर अरबों कर्ज है।'

'तो आपने उनकी तजवीज पर कोई हुक्म दिया?'

'इतनी जल्द भला छः महीने तो गुजरने दीजिए। अभी हम काश्तकारों की हालत की जांच करेंगे, उसकी रिपोर्ट भेजी जाएगी, फिर रिपोर्ट पर गौर किया जाएगा, तब कहीं कोई हुक्म निकलेगा।'

'तब तक तो असामियों के बारे-न्यारे हो जाएंगे। अजब नहीं कि फसाद शुरू हो जाए।'

'तो क्या आप चाहते हैं, सरकार अपनी बजा छोड़ दे- यह दफ्तरी हुक्मत है जनाब वहां सभी काम जाबते के साथ होते हैं। आप हमें गालियां दें, हम आपका कुछ नहीं कर सकते। पुलिस में रिपोर्ट होगी। पुलिस आपका चालान करेगी। होगा वही, जो मैं चाहूंगा मगर जाबते के साथ। खैर, यह तो मजाक था। आपके दोस्त मि. सलीम बहुत जल्द उस इलाके की तहकीकात करेंगे, मगर देखिए, झूठी शहादतें न पेश कीजिएगा कि यहां से निकाले जाएं। मि. सलीम आपकी बड़ी तारीफ करते हैं, मगर भाई, मैं तुम लोगों से डरता हूं। खासकर तुम्हारे स्वामी से। बड़ा ही मुफसिद आदमी है। उसे फंसा क्यों नहीं देते- मैंने सुना है, वह तुम्हें बदनाम करता फिरता है।'

इतना बड़ा अफसर अमर से इतनी बेतकल्लुफी से बातें कर रहा था, फिर उसे क्यों न नशा हो जाता- सचमुच आत्मानन्द आग लगा रहा है। अगर वह गिरफ्तार हो जाए, तो इलाके में शांति हो जाए। स्वामी साहसी है, यथार्थ वक्ता है, देश का सच्चा सेवक है लेकिन इस वक्त उसका गिरफ्तार हो जाना ही अच्छा है।

उसने कुछ इस भाव से जवाब दिया कि उसके मनोभाव प्रकट न हों पर स्वामी पर वार चल जाय-मुझे तो उनसे कोई शिकायत नहीं है, उन्हें अख्तियार है, मुझे जितना चाहें बदनाम करें।

गजनवी ने सलीम से कहा-तुम नोट कर लो मि. सलीम। कल इस हलके के थानेदार को लिख दो, इस स्वामी की खबर ले। बस, अब सरकारी काम खत्म। मैंने सुना है मि. अमर कि आप औरतों को वश में करने का कोई मंत्र जानते हैं।

अमर ने सलीम की गरदन पकड़कर कहा-तुमने मुझे बदनाम किया होगा।

सलीम बोला-तुम्हें तुम्हारी हरकतें बदनाम कर रही हैं, मैं क्यों करने लगा-

गजनवी ने बांकपन के साथ कहा-तुम्हारी बीबी गजब की दिलेर औरत है, भाई आजकल म्युनिसिपैलिटी से उनकी जोर-आजमाई है और मुझे यकीन है, बोर्ड को झुकना पड़ेगा। अगर भाई, मेरी बीबी ऐसी होती, तो मैं फकीर हो जाता। वल्लाह ।

अमर ने हंसकर कहा-क्यों आपको तो और खुश होना चाहिए था।

गजनवी-जी हां वह तो जनाब का दिल ही जानता होगा।

सलीम-उन्हीं के खौफ से तो यह भागे हुए हैं।

गजनवी-यहां कोई जलसा करके उन्हें बुलाना चाहिए।

सलीम-क्यों बैठे-बिठाए जहमत मोल लीजिएगा। वह आई और शहर में आग लगी, हमें बंगलों से निकलना पड़ा।

गजनवी-अजी, यह तो एक दिन होना ही है। वह अमीरों की हुकूमत अब थोड़े दिनों की मेहमान है। इस मुल्क में अंग्रेजों का राज है, इसलिए हममें जो अमीर हैं और जो कुदरती तौर पर अमीरों की तरफ खड़े होते हैं, वह भी गरीबों की तरफ खड़े होने में खुश हैं क्योंकि गरीबों के साथ उन्हें कम-से-कम इज्जत तो मिलेगी, उधर तो यह डौल भी नहीं है। मैं अपने को इसी जहमत में समझता हूं।

तीनों मित्रों में बड़ी रात तक बेतकल्लुफी से बातें होती रहीं। सलीम ने अमर की पहले ही खूब तारीफ कर दी थी। इसलिए उसकी गंवाई सूरत होने पर भी गजनवी बराबरी के भाव से मिला। सलीम के लिए हुकूमत नई चीज थी। अपने नए जूते की तरह उसे कीचड़ और पानी से बचाता था। गजनवी हुकूमत का आदी हो चुका था और जानता था कि पांव नए जूते से कहीं ज्यादा कीमती चीज है। रमणी-चर्चा उसके कौतूहल, आनंद और मनोरंजन का मुख्य विषय थी। क्वारों की रसिकता बहुत धीरे-धीरे सूखने वाली वस्तु है। उनकी अत्स लालसा प्रायः रसिकता के रूप में प्रकट होती है।

अमर ने गजनवी से पूछा-आपने शादी क्यों नहीं की- मेरे एक मित्र प्रोफेसर डॉक्टर शान्तिकुमार हैं, वह भी शादी नहीं करते। आप लोग औरतों से डरते होंगे।

गजनवी ने कुछ याद करके कहा-शान्तिकुमार वही तो हैं, खूबसूरत से, गोरे-चिट्ठे, गठे हुए बदन के आदमी। अजी, वह तो मेरे साथ पढ़ता था यार। हम दोनों ऑक्सफोर्ड में थे। मैंने लिटरेचर लिया था, उसने पोलिटिकल फिलॉसोफी ली थी। मैं उसे खूब बनाया करता था, यूनिवर्सिटी में है न- अक्सर उसकी याद आती थी।

सलीम ने उसके इस्तीफे, ट्रस्ट और नगर-कार्य का जिक्र किया।

गजनवी ने गरदन हिलाई, मानो कोई रहस्य पा गया है-तो यह कहिए, आप लोग उनके शागिर्द हैं। हम दोनों में अक्सर शादी के मसले पर बातें होती थीं। मुझे तो डॉक्टरों ने मना किया था क्योंकि उस वक्त मुझमें टी. वी. की कुछ अलामतें नजर आ रही थीं। जवान बेवा छोड़ जाने के खयाल से मेरी देह कांपती थी। तब से मेरी गुजरान तीर-तुक्के पर ही है। शान्तिकुमार को तो कौमी खिदमत और जाने क्या-क्या खब्त था मगर ताज्जुब यह है कि अभी तक उस खब्त ने उसका गला नहीं छोड़ा। मैं समझता हूं, अब उसकी हिम्मत न पड़ती होगी। मेरे ही हमसिन तो थे। जरा उनका पता तो बताना- मैं उन्हें यहां आने की दावत दूंगा।

सलीम ने सिर हिलाया-उन्हें फुरसत कहां- मैंने बुलाया था, नहीं आए।

गजनवी मुस्कराए-तुमने निज के तौर पर बुलाया होगा। किसी इंस्टिट्यूशन की तरफ से बुलाओ और कुछ चंदा करा देने का वादा कर लो, फिर देखो, चारों-हाथ पांव से दौड़े आते हैं या नहीं। इन कौमी खादिमों की जान चंदा है, ईमान चंदा है और शायद खुदा भी चंदा है। जिसे देखो, चंदे की हाय-हाय। मैंने कई बार इस खादिमों को चरका दिया, उस

वक्त इन खादिमों की सूरतें देखने ही से ताल्लुक रखती हैं। गालियां देते हैं, पैतरे बदलते हैं, जबान से तोप के गोले छोड़ते हैं, और आप उनके बौखलपन का मजा उठा रहे हैं। मैंने तो एक बार एक लीडर साहब को पागलखाने में बंद कर दिया था। कहते हैं अपने को कौम का खादिम और लीडर समझते हैं।

सवेरे मि. गजनवी ने अमर को अपनी मोटर पर गांव में पहुंचा दिया। अमर के गर्व और आनंद का पारावार न था। अफसरों की सोहबत ने कुछ अफसरी की शान पैदा कर दी थी-हाकिम परगना तुम्हारी हालत जांच करने आ रहे हैं। खबरदार, कोई उनके सामने झूठा बयान न दे। जो कुछ वह पूछें, उसका ठीक-ठीक जवाब दो। न अपनी दशा को छिपाओ, न बढ़ाकर बताओ। तहकीकात सच्ची होनी चाहिए। मि. सलीम बड़े नेक और गरीब-दोस्त आदमी हैं। तहकीकात में देर जरूर लगेगी, लेकिन राज्य-व्यवस्था में देर लगती ही है। इतना बड़ा इलाका है, महीनों घूमने में लग जाएंगे। तब तक तुम लोग खरीफ का काम शुरू कर दो। रुपये-आठ आने छूट का मैं जिम्मा लेता हूं। सब्र का फल मीठा होता है, समझ लो।

स्वामी आत्मानन्द को भी अब विश्वास आ गया। उन्होंने देखा, अकेला ही सारा यश लिए जाता है और मेरे पल्ले अपयश के सिवा और कुछ नहीं पड़ता, तो उन्होंने पहलू बदला। एक जलसे में दोनों एक ही मंच से बोले। स्वामीजी झुके, अमर ने कुछ हाथ बढ़ाया। फिर दोनों में सहयोग हो गया।

इधर असाढ़ की वर्षा शुरू हुई उधर सलीम तहकीकात करने आ पहुंचा। दो-चार गांवों में असामियों के बयान लिखे भी लेकिन एक ही सप्ताह में ऊब गया। पहाड़ी डाक-बंगले में भूत की तरह अकेले पड़े रहना उसके लिए कठिन तपस्या थी। एक दिन बीमारी का बहाना करके भाग खड़ा हुआ और एक महीने तक टाल-मटोल करता रहा। आखिर जब ऊपर से डांट पड़ी और गजनवी ने सख्त ताकीद की तो फिर चला। उस वक्त सावन की झड़ी लग गई थी, नदी, नाले-भर गए थे, और कुछ ठंडक आ गई थी। पहाड़ियों पर हरियाली छा गई थी। मोर बोलने लगे थे। प्राकृतिक शोभा ने देहातों को चमका दिया था।

कई दिन के बाद आज बादल खुले थे। महन्तजी ने सरकारी फैसले के आने तक रुपये में चार आने की छूट की घोषणा दी थी और कारिंदे बकाया वसूल करने की फिर चेष्टा करने लगे थे। दो-चार असामियों के साथ उन्होंने सख्ती भी की थी। इस नई समस्या पर विचार करने के लिए आज गंगा-तट पर एक विराट् सभा हो रही थी। भोला चौधरी सभापति बनाए गए और स्वामी आत्मानन्द का भाषण हो रहा था-सज्जनो, तुम लोगों में ऐसे बहुत कम हैं, जिन्होंने आधा लगान न दे दिया हो। अभी तक तो आधो की चिंता थी। अब केवल आधो-के-आधो की रूचता है। तुम लोग खुशी से दो-दो आने और दे दो, सरकार महन्तजी की मलागुजारी में कुछ-न-कुछ छूट अवश्य करेगी। अब की छः आने छूट पर संतुष्ट हो जाना चाहिए। आगे की फसल में अगर अनाज का भाव यही रहा, तो हमें आशा है कि आठ आने की छूट मिल जाएगी। यह मेरा प्रस्ताव है, आप लोग इस पर विचार करें। मेरे मित्र अमरकान्त की भी यही राय है। अगर आप लोग कोई और प्रस्ताव करना चाहते हैं तो हम उस पर विचार करने को भी तैयार हैं।

इसी वक्त डाकिये ने सभा में आकर अमरकान्त के हाथ में एक लिफाफा रख दिया। पते की लिखावट ने बता दिया कि नैना का पत्र है। पढ़ते ही जैसे उस पर नशा छा गया। मुख पर ऐसा तेज आ गया, जैसे अग्नि में आहुति पड़ गई हो। गर्व भरी आंखों से इधर-उधर देखा। मन के भाव जैसे छलांगें मारने लगे। सुखदा की गिरफ्तारी और जेल-यात्रा का वृत्तांत था। आह वह जेल गई और वह यहां पड़ा हुआ है उसे बाहर रहने का क्या अधिकार है वह कोमलांगी जेल में है, जो कड़ी दृष्टि भी न सह सकती थी, जिसे रेशमी वस्त्र भी चुभते थे, मखमली गद्दे भी गड़ते थे, वह आज जेल की

यातना सह रही है। वह आदर्श नारी, वह देश की लाज रखने वाली, वह कुल लक्ष्मी, आज जेल में है। अमर के हृदय का सारा रक्त सुखदा के चरणों पर गिरकर बह जाने के लिए मचल उठा। सुखदा सुखदा चारों ओर वही मूर्ति थी। संध्या की लालिमा से रंजित गंगा की लहरों पर बैठी हुई कौन चली जा रही है- सुखदा ऊपर असीम आकाश में केसरिया साड़ी पहने कौन उठी जा रही है- सुखदा सामने की श्याम पर्वतमाला में गोधुलि का हार गले में डाले कौन खड़ी है- सुखदा अमर विक्षिप्तों की भांति कई कदम आगे दौड़ा, मानो उसकी पद-रज मस्तक पर लगा लेना चाहता हो।

सभा में कौन क्या बोला, इसकी उसे खबर नहीं। वह खुद क्या बोला, इसकी भी उसे खबर नहीं। जब लोग अपने-अपने गांवों को लौटे तो चन्द्रमा का प्रकाश फैल गया था। अमरकान्त का अंतःकरण कृतज्ञता से परिपूर्ण था। जैसे अपने ऊपर किसी की रक्षा का साया उसी ज्योत्स्ना की भांति फैला हुआ जान पड़ा। उसे प्रतीत हुआ, जैसे उसके जीवन में कोई विधन है, कोई आदेश है, कोई आशीर्वाद है, कोई सत्य है, और वह पग-पग पर उसे संभालता है, बचाता है। एक महान् इच्छा, एक महान् चेतना के संसर्ग का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ।

सहसा मुन्नी ने पुकारा-लाला, आज तो तुमने आग ही लगा दी।

अमर ने चौंककर कहा-मैंने ।

तब उसे अपने भाषण का एक-एक शब्द याद आ गया। उसने मुन्नी का हाथ पकड़ कर कहा-हां मुन्नी, अब हमें वही करना पड़ेगा, जो मैंने कहा। जब तक हम लगान देना बंद न करेंगे। सरकार यों ही टालती रहेगी।

मुन्नी संशक होकर बोली-आग में कूद रहे हो, और क्या-

अमर ने ठट्ठा मारकर कहा-आग में कूदने से स्वर्ग मिलेगा। दूसरा मार्ग नहीं है।

मुन्नी चकित होकर उसका मुंह देखने लगी। इस कथन में हंसने का क्याप्रयोजन वह समझ न सकी।

छः

सलीम यहां से कोई सात-आठ मील पर डाकबंगले में पड़ा हुआ था। हलके के थानेदार ने रात ही को उसे इस सभा की खबर दी और अमरकान्त का भाषण भी पढ़ सुनाया। उसे इन सभाओं की रिपोर्ट करते रहने की ताकीद दी गई थी ।

सलीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। अभी एक दिन पहले अमर उससे मिला था, और यद्यपि उसने महन्त की इस नई कार्रवाई का विरोध किया था। पर उसके विरोध में केवल खेद था, क्रोध का नाम भी न था। आज एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया-

उसने थानेदार से पूछा-महन्तजी की तरफ से कोई खास ज्यादाती तो नहीं हुई-

थानेदार ने जैसे इस शंका को जड़ से काटने के लिए तत्पर होकर कहा-बिलकुल नहीं, हुजूर उन्होंने तो सख्त ताकीद कर दी थी कि असाभियों पर किसी किस्म का जुल्म न किया जाय। बेचारे ने अपनी तरफ से चार आने की छूट दे दी, गाली-गुप्ता तो मामूली बात है।

'जलसे पर इस तकरीर का क्या असर हुआ?'

'हुजूर, यही समझ लीजिए, जैसे पुआल में आग लग जाय। महन्तजी के इलाके में बड़ी मुश्किल से लगान वसूल होगा।' सलीम ने आकाश की तरफ देखकर पूछा-आप इस वक्त मेरे साथ सदर चलने को तैयार हैं-

थानेदार को क्या उज्र हो सकता था। सलीम के जी में एक बार आया कि जरा अमर से मिले लेकिन फिर सोचा, अमर उसके समझाने से मानने वाला होता, तो यह आग ही क्यों लगाता-

सहसा थानेदार ने पूछा-हुजूर से तो इनकी जान-पहचान है-

सलीम ने चिढ़कर कहा-यह आपसे किसने कहा- मेरी सैकड़ों से जान-पहचान है, तो फिर - अगर मेरा लड़का भी कानून के खिलाफ काम करे, तो मुझे उसकी तंबीह करनी पड़ेगी।

थानेदार ने खुशामद की-मेरा यह मतलब नहीं था। हुजूर हुजूर से जान-पहचान होने पर भी उन्होंने हुजूर को बदनाम करने में ताम्मुल न किया, मेरी यही मंशा थी।

सलीम ने कुछ जवाब तो न दिया पर यह उस मुआमले का नया पहलू था। अमर को उसके इलाके में यह तूफान न उठाना चाहिए था, आखिर अफसरान यही तो समझेंगे कि यह नया आदमी है, अपने इलाके पर इसका रोब नहीं है।

बादल फिर घिरा आता था। रास्ता भी खराब था। उस पर अंधेरी रात, नदियों का उतार मगर उसका गजनवी से मिलना जरूरी था। कोई तजर्बेकार अफसर इस कदर बदहवास न होता पर सलीम नया आदमी था।

दोनों आदमी रात-भर की हैरानी के बाद सवेरे सदर पहुंचे। आज मियां सलीम को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ। यहां केवल हुकूमत नहीं है, हैरानी और जोखिम भी है, इसका अनुभव हुआ। जब पानी का झोंका आता, या कोई नाला सामने आ पड़ता, तो वह इस्तीफा देने की ठान लेता-यह नौकरी है या बला है मजे से जिंदगी गुजरती थी। यहां कुत्तो-खसी में आ फंसा। लानत है ऐसी नौकरी पर कहीं मोटर खड्ड में जा पड़े, तो हड्डियों का भी पता न लगे। नई मोटर चौपट हो गई।

बंगले पर पहुंचकर उसने कपड़े बदले, नाश्ता किया और आठ बजे गजनवी के पास जा पहुंचा। थानेदार कोतवाली में ठहरा था। उसी वक्त वह भी हाजिर हुआ।

गजनवी ने वृत्तांत सुनकर कहा-अमरकान्त कुछ दीवाना तो नहीं हो गया है। बातचीत से बड़ा शरीफ मालूम होता था मगर लीडरी भी मुसीबत है बेचारा कैसे नाम पैदा करें। शायद हजरत समझे होंगे, यह लोग तो दोस्त हो ही गए, अब क्या फिक्र। 'सैयां भए कोतवाल अब डर काहे का।' और जिलों में भी तो शोरिश है। मुमकिन है, वहां से ताकीद हुई हो। सूझी है इन सभी को दूर की ओर हक यह है कि किसानों की हालत नाजुक है। यों भी बेचारों को पेट भर दाना न मिलता था, अब तो जिसें और भी सस्ती हो गई। पूरा लगान कहां, आधो की भी गुंजाइश नहीं है, मगर सरकार का इंतजाम तो होना ही चाहिए हुकूमत में कुछ-कुछ खौफ और रोब का होना भी जरूरी है, नहीं उसकी सुनेगा कौन-किसानों को आज यकीन हो जाय कि आधा लगान देकर उनकी जान बच सकती है, तो कल वह चौथाई पर लड़ेंगे और परसों पूरी मुआफी का मुतालवा करेंगे। मैं तो समझता हूं, आप जाकर लाला अमरकान्त को गिरफ्तार कर लें। एक बार कुछ हलचल मचेगा, मुमकिन है, दो-चार गांवों में फसाद भी हो मगर खुले हुए फसाद को रोकना उतना मुश्किल नहीं है, जितना इस हवा को। मवाद जब फोड़े की सूरत में आ जाता है, तो उसे चीरकर निकाल दिया जा सकता है लेकिन वही दिल, दिमाफ की तरफ चला जाय, तो जिंदगी का खात्मा हो जाएगा। आप अपने साथ

सुपरिंटेंडेंट पुलिस को भी ले लें और अमर को दगा एक सौ चौबीस में गिरफ्तार कर लें। उस स्वामी को भी लीजिए। दारोगाजी, आप जाकर साहब बहादुर से कहिए, तैयार रहें।

सलीम ने व्यथित कंठ से कहा-मैं जानता कि यहां आते-ही-आते इस अजाब में जान फंसेगी, तो किसी और जिले की कोशिश करता। क्या अब मेरा तबादला नहीं हो सकता-

थानेदार ने पूछा-हुजूर, कोई खत न देंगे-

गजनवी ने डांट बताई-खत की जरूरत नहीं है। क्या तुम इतना भी नहीं कह सकते-

थानेदार सलाम करके चला गया, तो सलीम ने कहा-आपने इसे बुरी तरह डांटा, बेचारा रूआंसा हो गया। आदमी अच्छा है।

गजनवी ने मुस्कराकर कहा-जी हां, बहुत अच्छा आदमी है। रसद खूब पहुंचाता होगा मगर रियाया से उसकी दस गुनी वसूल करता है। जहां किसी मातहत ने जरूरत से ज्यादा खिदमत और खुशामद की, मैं समझ जाता हूं कि यह छंटा हुआ गुर्गा है। आपकी लियाकत का यह हाल है कि इलाके में सदा ही वारदातें होती हैं, एक का भी पता नहीं चलता। इसे झूठी शहादतें बनाना भी नहीं आता। बस, खुशामद की रोटियां खाता है। अगर सरकार पुलिस का सुधार कर सके, तो स्वराज्य की मांग पचास साल के लिए टल सकती है। आज कोई शरीफ आदमी पुलिस से सरोकार नहीं रखना चाहता। थाने को बदमाशों का अड्डा समझकर उधर से मुंह फेर लेता है। यह सीफा इस राज का कलंक है। अगर आपको दोस्त को गिरफ्तार करने में तकल्लुफ हो, तो मैं डी. एस. पी. को ही भेज दूं। उन्हें गिरफ्तार करना फर्ज हो गया है। अगर आप यह नहीं चाहते कि उनकी जिल्लत हो, तो आप जाइए। अपनी दोस्ती का हक अदा करने ही के लिए जाइए। मैं जानता हूं, आपको सदमा हो रहा है। मुझे खुद रंज है। उस थोड़ी देर की मुलाकात में ही मेरे दिल पर उनका सिक्का जम गया। मैं उनके नेक इरादों की कद्र करता हूं लेकिन हम और वह दो कैंपों में हैं। स्वराज्य हम भी चाहते हैं मगर इन्कलाब के सिवा हमारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। इतनी फौज रखने की क्या जरूरत है, जो सरकार की आमदनी का आधा हजम कर जाय। फौज का खर्च आधा कर दिया जाय, तो किसानों का लगान बड़ी आसानी से आधा हो सकता है। मुझे अगर स्वराज्य से कोई खौफ है तो यह कि मुसलमानों की हालत कहीं और खराब न हो जाय। गलत तवारीखें पढ़-पढ़कर दोनों फिरके एक-दूसरे के दुश्मन हो गए हैं और मुमकिन नहीं कि हिन्दू मौका पाकर मुसलमानों से फर्जी अदावतों का बदला न लें लेकिन इस खयाल से तसल्ली होती है कि इस बीसवीं सदी में हिन्दुओं जैसी पढ़ी-लिखी जमाअत मजहबी गरोहबंदी की पनाह नहीं ले सकती। मजहब का दौर खतम हो रहा है बल्कि यों कहो कि खतम हो गया। सिर्फ हिन्दुस्तान में उसमें कुछ-कुछ जान बाकी है। यह तो दौलत का जमाना है। अब कौम में अमीर और गरीब, जायदाद वाले और मरभुखे, अपनी-अपनी जमाअतें बनाएंगे। उसमें कहीं ज्यादा खूरेजी होगी, कहीं ज्यादा तंगदिली होगी। आखिर एक-दो सदी के बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जाएगी। सबका एक कानून, एक निजाम होगा, कौम के खादिम कौम पर हुकूमत करेंगे, मजहब शख्सी चीज होगी। न कोई राजा होगा, न कोई परजा।

फौन की घंटी बजी, गजनवी ने चोगा कान से लगाया-मि. सलीम कब चलेंगे-

गजनवी ने पूछा-आप कब तक तैयार होंगे-

'मैं तैयार हूं।'

'तो एक घंटे में आ जाइए।'

सलीम ने लंबी सांस खींचकर कहा-तो मुझे जाना ही पड़ेगा-

'बेशक मैं आपके और अपने दोस्त को पुलिस के हाथ में नहीं देना चाहता।'

'किसी हीले में अमर को यहीं बुला क्यों न लिया जाय?'

'वह इस वक्त नहीं आएंगे।'

सलीम ने सोचा, अपने शहर में जब यह खबर पहुंचेगी कि मैंने अमर को गिरफ्तार किया, तो मुझ पर कितने जूते पड़ेंगे शान्तिकुमार तो नोंच ही खाएंगे और सकीना तो शायद मेरा मुंह देखना भी पसंद न करे। इस खयाल से वह कांप उठा। सोने की हंसिया न उगलते बनती थी, न निगलते।

उसने उठकर कहा-आप डी. एस. पी. को भेज दें। मैं नहीं जाना चाहता।

गजनवी ने गंभीर होकर पूछा-आप चाहते हैं कि उन्हें वहीं से हथकड़ियां पहनाकर और कमर में रस्सी डालकर चार कांस्टेबलों के साथ लाया जाय और जब पुलिस उन्हें लेकर चले, उसे भीड़ को हटाने के लिए गोलियां चलानी पड़ें-

सलीम ने घबराकर कहा-क्या डी. एस. पी. को इन सख्तियों से रोका नहीं जा सकता-

'अमरकान्त आपके दोस्त हैं, डी. एस. पी. के दोस्त नहीं।'

'तो फिर आप डी. एस. पी. को मेरे साथ न भेजें।'

'आप अमर को यहां ला सकते हैं?'

'दगा करनी पड़ेगी।'

'अच्छी बात है, आप जाइए, मैं डी. एस. पी. को मना किए देता हूं।'

'मैं वहां कुछ कहूंगा ही नहीं।'

'इसका आपको अख्तियार है।'

सलीम अपने डेरे पर लौटा तो ऐसा रंजीदा था, गोया अपना कोई अजीज मर गया हो। आते-ही-आते सकीना, शान्तिकुमार, लाला समरकान्त, नैना, सबों को एक-एक खतलिखकर अपनी मजबूरी और दुःख प्रकट किया। सकीना को उसने लिखा-मेरे दिल पर इस वक्त जो गुजर रही है वह मैं तुमसे बयान नहीं कर सकता। शायद अपने जिगर पर खंजर चलाते हुए भी मुझे इससे ज्यादा दर्द न होता। जिसकी मुहब्बत मुझे यहां खींच लाई, उसी को आज मैं इन जालिम हाथों से गिरफ्तार करने जा रहा हूं। सकीना, खुदा के लिए मुझे कमीना, बेदर्द और खुदगर्ज न समझो। खून के आंसू रो रहा हूं। जिसे अपने आंचल से पोंछ दो। मुझ पर अमर के इतने एहसान हैं कि मुझे उनके पसीने की जगह अपना खून बहाना चाहिए था और मैं उनके खून का मजा ले रहा हूं। मेरे गले में शिकारी का खौफ है और उसके इशारे पर वह सब कुछ करने पर मजबूर हूं, जो मुझे न करना लाजिम था। मुझ पर रहम करो सकीना, मैं बदनसीब हूं।

खानसामे ने आकर कहा-हुजूर, खाना तैयार है।

सलीम ने सिर झुकाए हुए कहा-मुझे भूख नहीं है।

खानसामा पूछना चाहता था हुजूर की तबीयत कैसी है- मेज पर कई लिखे खत देखकर डर रहा था कि घर से कोई बुरी खबर तो नहीं आई।

सलीम ने सिर उठाया और हसरत-भरे स्वर में बोला-उस दिन वह मेरे एक दोस्त नहीं आए थे, वही देहातियों की-सी सूरत बनाए हुए, वह मेरे बचपन के साथी हैं। हम दोनों एक ही कॉलेज में पढ़े। घर के लखपती आदमी हैं। बाप हैं, बाल-बच्चे हैं। इतने लायक हैं कि मुझे उन्होंने पढ़ाया। चाहते, तो किसी अच्छे ओहदे पर होते। फिर घर में ही किस बात की कमी है, मगर गरीबों का इतना दर्द है कि घर-बार छोड़कर यहीं एक गांव में किसानों की खिदमत कर रहे हैं। उन्हीं को गिरफ्तार करने का मुझे हुक्म हुआ है।

खानसामा और समीप आकर जमीन पर बैठ गया-क्या कसूर किया था हुजूर, उन बाबू साहब ने-

'कुसूर- कोई कुसूर नहीं, यही कि किसानों की मुसीबत उनसे नहीं देखी जाती।'

'हुजूर ने बड़े साहब को समझाया नहीं?'

'मेरे दिल पर इस वक्त जो कुछ गुजर रही है, वह मैं ही जानता हूं हनीफ, आदमी नहीं फरिश्ता है। यह है सरकारी नौकरी।'

'तो हुजूर को जाना पड़ेगा?'

'हां, इसी वक्त इस तरह दोस्ती का हक अदा किया जाता है ।'

'तो उन बाबू साहब को नजरबंद किया जाएगा, हुजूर?'

'खुदा जाने क्या किया जाएगा- ड्राईवर से कहो, मोटर लाए। शाम तक लौट आना जरूरी है।'

जरा देर में मोटर आ गई। सलीम उसमें आकर बैठा, तो उसकी आंखें सजल थीं।

सात

आज कई दिन के बाद तीसरे पहर सूर्यदेव ने पृथ्वी की पुकार सुनी और जैसे समाधि से निकलकर उसे आशीर्वाद दे रहे थे। पृथ्वी मानो अंचल फैलाए उनका आशीर्वाद बटोर रही थी।

इसी वक्त स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त दोनों दो दिशाओं से मदरसे में आए।

अमरकान्त ने माथे से पसीना पोंछते हुए कहा-हम लोगों ने कितना अच्छा प्रोग्राम बनाया था कि एक साथ लौटे। एक क्षण भी विलंब न हुआ। कुछ खा-पीकर फिर निकलें और आठ बजते-बजते लौट आए।

आत्मानन्द ने भूमि पर लेटकर कहा-भैया, अभी तो मुझसे एक पग न चला जाएगा। हां, प्राण लेना चाहो, तो ले लो। भागते-भागते कचूमर निकल गया। पहले शर्बत बनवाओ, पीकर ठंडे हों, तो आंखें खुलें।

'तो फिर आज का काम समाप्त हो चुका?'

'हो या भाड़ में जाय, क्या प्राण दे दें- तुमसे हो सकता है करो, मुझसे तो नहीं हो सकता।'

अमर ने मुस्कराकर कहा-यार मुझसे दूने तो हो, फिर भी चें बोल गए। मुझे अपना बल और अपना पाचन दे दो, फिर देखो, मैं क्या करता हूं-

आत्मानन्द ने सोचा था, उनकी पीठ ठोंकी जाएगी, यहां उनके पौरुष पर आक्षेप हुआ। बोले-तुम मरना चाहते हो, मैं जीना चाहता हूं।

'जीने का उद्देश्य तो कर्म है।'

'हां, मेरे जीवन का उद्देश्य कर्म ही है। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य तो अकाल मृत्यु है।'

'अच्छा शर्बत पिलवाता हूं, उसमें दही भी डलवा दूं?'

'हां, दही की मात्रा अधिक हो और दो लोटे से कम न हो। इसके दो घंटे बाद भोजन चाहिए।'

'मार डाला तब तक तो दिन ही गायब हो जाएगा।'

अमर ने मुन्नी को बुलाकर शर्बत बनाने को कहा और स्वामीजी के बराबर ही जमीन पर लेटकर पूछा-इलाके की क्या हालत है-

'मुझे तो भय हो रहा है, कि लोग धोखा देंगे। बेदखली शुरू हुई, तो बहुतों के आसन डोल जाएंगे।'

'तुम तो दार्शनिक न थे, यह घी पत्तो पर या पत्ता घी पर की शंका कहां से लाए?'

'ऐसा काम ही क्यों किया जाय, जिसका अंत लज्जा और अपमान हो- मैं तुमसे सत्य कहता हूं, मुझे बड़ी निराशा हुई।'

'इसका अर्थ यह है कि आप इस आंदोलन के नायक बनने के योग्य नहीं हैं। नेता में आत्मविश्वास, साहस और धैर्य, ये मुख्य लक्षण हैं।'

मुन्नी शर्बत बनाकर लाई। आत्मानन्द ने कमंडल भर लिया और एक सांस में चढ़ा गए। अमरकान्त एक कटोरे से ज्यादा न पी सके।

आत्मानन्द ने मुंह छिपाकर कहा-बस फिर भी आप अपने को मनुष्य कहते हैं-

अमर ने जवाब दिया-बहुत खाना पशुओं का काम है।

'जो खा नहीं सकता वह काम क्या करेगा?'

'नहीं, जो कम खाता है, वही काम कर सकता है। पेटू के लिए सबसे बड़ा काम भोजन पचाना है।'

सलोनी कल से बीमार थी। अमर उसे देखने चला था कि मदरसे के सामने ही मोटर आते देखकर रुक गया। शायद इस गांव में मोटर पहली बार आई हो। वह सोच रहा था, किसकी मोटर है कि सलीम उसमें से उतर पड़ा। अमर ने लपककर हाथ मिलाया-कोई जरूरी काम था, मुझे क्यों न बुला लिया-

दोनों आदमी मदरसे में आए। अमर ने एक खाट लाकर डाल दी और बोला-तुम्हारी क्या खातिर करूं- यहां तो कमंडल की हालत है। शर्बत बनवाऊं-

सलीम ने सिगार जलाते हुए कहा-नहीं, कोई तकल्लुफ नहीं। मि. गजनवी तुमसे किसी मुआमले में सलाह करना चाहते हैं। मैं आज ही जा रहा हूं। सोचा, तुम्हें भी लेता चलूं। तुमने तो कल आग लगा ही दी। अब तहकीकात से क्या फायदा होगा- वह तो बेकार हो गई।

अमर ने कुछ झिझकते हुए कहा-महन्तजी ने मजबूर कर दिया। क्या करता-

सलीम ने दोस्ती की आड़ ली-मगर इतना तो सोचते कि यह मेरा इलाका है और यहां की सारी जिम्मेदारी मुझ पर है। मैंने सड़क के किनारे अक्सर गांवों में लोगों के जमाव देखे। कहीं-कहीं तो मेरी मोटर पर पत्थर भी फेंके गए। यह अच्छे आसार नहीं हैं। मुझे खौफ है, कोई हंगामा न हो जाय। अपने हक के लिए या बेजा जुल्म के खिलाफ रियाया में जोश हो, तो मैं इसे बुरा नहीं समझता, लेकिन यह लोग कायदे-कानून के अंदर रहेंगे, मुझे इसमें शक है। तुमने गूंगों को आवाज दी, सोतों को जगाया लेकिन ऐसी तहरीक के लिए जितने जब्त और सब्र की जरूरत है, उसका दसवां भी हिस्सा मुझे नजर नहीं आता।

अमर को इस कथन में शासन-पक्ष की गंध आई। बोला-तुम्हें यकीन है कि तुम भी वह गलती नहीं कर रहे, जो हुक्म किया करते हैं- जिनकी जिंदगी आराम और फरागत से गुजर रही है, उनके लिए सब्र और जब्त की हांक लगाना आसान है लेकिन जिनकी जिंदगी का हरेक दिन एक नई मुसीबत है, वह नजात को अपनी जनवासी चाल से आने का इंतजार नहीं कर सकते। यह उसे खींच लाना चाहते हैं, और जल्द-से-जल्द।

'मगर नजात के पहले कयामत आएगी, यह भी याद रहे।'

'हमारे लिए यह अंधेर ही कयामत है जब पैदावार लागत से भी कम हो, तो लगान की गुंजाइश कहां - उस पर भी हम आठ आने पर राजी थे। मगर बारह आने हम किसी तरह नहीं दे सकते। आखिर सरकार किफायत क्यों नहीं करती- पुलिस और फौज और इंतजाम पर क्यों इतनी बेदर्री से रुपये उड़ाए जाते हैं- किसान गूंगे हैं, बेबस हैं, कमजोर हैं। क्या इसलिए सारा नजला उन्हीं पर गिरना चाहिए?'

सलीम ने अधिकार-गर्व से कहा-तो नतीजा क्या होगा, जानते हो- गांव-के-गांव बर्बाद हो जाएंगे, फौजी कानून जारी हो जाएगा, शायद पुलिस बैठा दी जाएगी, फसलें नीलाम कर दी जाएंगी, जमीनें जब्त हो जाएंगी। कयामत का सामना होगा?'

अमरकान्त ने अविचलित भाव से कहा-जो कुछ भी हो, मर-मिटना जुल्म के सामने सिर झुकाने से अच्छा है।

मदरसे के सामने हुजूम बढ़ता जाता था-सलीम ने विवाद का अंत करने के लिए कहा-चलो इस मुआमले पर रास्ते में बहस करेंगे। देर हो रही है।

अमर ने चटपट कुरता गले में डाला और आत्मानन्द से दो-चार जरूरी बातें करके आ गया। दोनों आदमी आकर मोटर पर बैठे। मोटर चली, तो सलीम की आंखों में आंसू डबडबाए हुए थे। अमर ने सशंक होकर पूछा-मेरे साथ दगा तो नहीं कर रहे हो-

सलीम अमर के गले लिपटकर बोला-इसके सिवा और दूसरा रास्ता न था। मैं नहीं चाहता था कि तुम्हें पुलिस के हाथों जलील किया जाय।

'तो जरा ठहरो, मैं अपनी कुछ जरूरी चीजें तो ले लूं।'

'हां-हां, ले लो, लेकिन राज खुल गया, तो यहां मेरी लाश नजर आएगी।'

'तो चलो कोई मुजायका नहीं।'

गांव के बाहर निकले ही थे कि मुन्नी आती हुई दिखाई दी। अमर ने मोटर रूकवाकर पूछा-तुम कहां गई थीं, मुन्नी-धाोबी से मेरे कपड़े लेकर रख लेना, सलोनी काकी के लिए मेरी कोठरी में ताक पर दवा रखी है। पिला देना।

मुन्नी ने सहमी हुई आंखों से देखकर कहा-तुम कहां जाते हो-

'एक दोस्त के यहां दावत खाने जा रहा हूं।'

मोटर चली। मुन्नी ने पूछा-कब तक आओगे-

अमर ने सिर निकालकर उससे दोनों हाथ जोड़कर कहा-जब भाग्य लाए।

आठ

साथ के पढ़े, साथ के खेले, दो अभिन्न मित्र, जिनमें धौल-धाप्पा, हंसी-मजाक सब कुछ होता रहता था, परिस्थितियों के चक्कर में पड़कर दो अलग रास्तों पर जा रहे थे। लक्ष्य दोनों का एक था, उद्देश्य एक दोनों ही देश-भक्त, दोनों ही किसानों के शुभेच्छु पर एक अफसर था, दूसरा कैदी। दोनों सटे हुए बैठे थे, पर जैसे बीच में कोई दीवार खड़ी हो। अमर प्रसन्न था, मानो शहादत के जीने पर चढ़ रहा हो। सलीम दुःखी था जैसे भरी सभा में अपनी जगह से उठा दिया गया हो। विकास के सिद्धांत का खुली सभा में समर्थन करके उसकी आत्मा विजयी होती। निरंकुशता की शरण लेकर वह जैसे कोठरी में छिपा बैठा था।

सहसा सलीम ने मुस्कराने की चेष्टा करके कहा-क्यों अमर, मुझसे खगा हो-

अमर ने प्रसन्न मुख से कहा-बिलकुल नहीं। मैं तुम्हें अपना वही पुराना दोस्त समझ रहा हूं। उसूलों की लड़ाई हमेशा होती रही है और होती रहेगी। दोस्ती में इससे फर्क नहीं आता।

सलीम ने अपनी सफाई दी-भाई, इंसान-इंसान है, दो मुखालिग गिरोहों में आकर दिल में कीना या मलाल पैदा हो जाय, तो ताज्जुब नहीं। पहले डी. एस. पी. को भेजने की सलाह थी पर मैंने इसे मुनासिब न समझा।

'इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा एहसानमंद हूं। मेरे ऊपर मुकदमा चलाया जाएगा?'

'हां, तुम्हारी तकरीरों की रिपोर्ट मौजूद है, और शहादतें भी जमा हो गई हैं। तुम्हारा क्या खयाल है, तुम्हारी गिरफ्तारी से यह शोरिश दब जाएगी या नहीं?'

'कुछ कह नहीं सकता। अगर मेरी गिरफ्तारी या सजा से दब जाय, तो इसका दब जाना ही अच्छा।'

उसने एक क्षण के बाद फिर कहा-रिआया को मालूम है कि उनके क्या-क्या हक हैं, यह मालूम है कि हकों की हिफाजत के लिए कुरबानियां करनी पड़ती हैं। मेरा फर्ज यहीं तक खत्म हो गया। अब वह जानें और उनका काम जाने। मुमकिन है, सख्तियों से दब जाएं, मुमकिन है, न दबें लेकिन दबें या उठें, उन्हें चोट जरूर लगी है। रिआया का दब जाना, किसी सरकार की कामयाबी की दलील नहीं है।

मोटर के जाते ही सत्य मुन्नी के सामने चमक उठा। वह आवेश में चिल्ला उठी-लाला पकड़े गए और उसी आवेश में मोटर के पीछे दौड़ी। चिल्लाती जाती थी-लाला पकड़े गए।

वर्षाकाल में किसानों को हार में बहुत काम नहीं होता। अधिकतर लोग घरों में होते हैं। मुन्नी की आवाज मानो खतरे का बिगुल थी। दम-के-दम में सारे गांव में यह आवाज गूंज उठी-भैया पकड़े गए

स्त्रियां घरों में से निकल पड़ीं-भैया पकड़े गए ।

क्षण मात्र में सारा गांव जमा हो गया और सड़क की तरफ दौड़ा। मोटर घूमकर सड़क से जा रही थी। पगडंडियों का एक सीधा रास्ता था। लोगों ने अनुमान किया, अभी इस रास्ते मोटर पकड़ी जा सकती है। सब उसी रास्ते दौड़े।

काशी बोला-मरना तो एक दिन है ही।

मुन्नी ने कहा-पकड़ना है, तो सबको पकड़ें। ले चलें सबको।

पयाग बोला-सरकार का काम है चोर-बदमाशों को पकड़ना या ऐसों को जो दूसरों के लिए जान लड़ा रहे हैं- वह देखो मोटर आ रही है। बस, सब रास्ते में खड़े हो जाओ। कोई न हटना, चिल्लाने दो।

सलीम मोटर रोकता हुआ बोला-अब कहो भाई। निकालूं पिस्तौल-

अमर ने उसका हाथ पकड़कर कहा-नहीं-नहीं, मैं इन्हें समझाए देता हूं।

'मुझे पुलिस के दो-चार आदमियों को साथ ले लेना था।'

'घबराओ मत, पहले मैं मरूंगा, फिर तुम्हारे ऊपर कोई हाथ उठाएगा।'

अमर ने तुरंत मोटर से सिर निकालकर कहा-बहनो और भाइयो, अब मुझे बिदा कीजिए। आप लोगों के सत्संग में मुझे जितना स्नेह और सुख मिला, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं परदेशी मुसाफिर था। आपने मुझे स्थान दिया, आदर दिया, प्रेम दिया मुझसे भी जो कुछ सेवा हो सकी, वह मैंने की। अगर मुझसे कुछ भूल-चूक हुई हो, तो क्षमा करना। जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे छोड़ना मत, यही मेरी याचना है। सब काम ज्यों-का-त्यों होता रहे, यही सबसे बड़ा उपहार है, जो आप मुझे दे सकते हैं। प्यारे बालको, मैं जा रहा हूं लेकिन मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।

काशी ने कहा-भैया, हम सब तुम्हारे साथ चलने को तैयार हैं।

अमर ने मुस्कराकर उत्तर दिया-नेवता तो मुझे मिला है, तुम लोग कैसे जाओगे-

किसी के पास इसका जवाब न था। भैया बात ही ऐसी करते हैं कि किसी से उसका जवाब नहीं बन पड़ता।

मुन्नी सबसे पीछे खड़ी थी, उसकी आंखें सजल थीं। इस दशा में अमर के सामने कैसे जाए- हृदय में जिस दीपक को जलाए, वह अपने अंधेरे जीवन में प्रकाश का स्वप्न देख रही थी, वह दीपक कोई उसके हृदय से निकाले लिए जाता है। वह सूना अंधकार क्या फिर वह सह सकेगी।

सहसा उसने उत्तोजित होकर कहा-इतने जने खड़े ताकते क्या हो उतार लो मोटर से जन-समूह में एक हलचल मची। एक ने दूसरे की ओर कैदियों की तरह देखा कोई बोला नहीं।

मुन्नी ने फिर ललकारा-खड़े ताकते क्या हो, तुम लोगों में कुछ दया है या नहीं जब पुलिस और फौज इलाके को खून से रंग दे, तभी-।

अमर ने मोटर से निकलकर कहा-मुन्नी, तुम बुद्धिमती होकर ऐसी बातें कर रही हो मेरे मुंह पर कालिख मत लगाओ।

मुन्नी उन्मुक्तों की भांति बोली-मैं बुद्धिमान् नहीं, मैं तो मूर्ख हूं, गंवारिन हूं। आदमी एक-एक पत्ती के लिए सिर कटा देता है, एक-एक बात पर जान देता है। क्या हम लोग खड़े ताकते रहें और तुम्हें कोई पकड़ ले जाए- तुमने कोई चोरी की है डाका मारा है-

कई आदमी उत्तोजित होकर मोटर की ओर बढ़े पर अमरकान्त की डांट सुनकर ठिठक गए-क्या करते हो पीछे हट जाओ। अगर मेरे इतने दिनों की सेवा और शिक्षा का यही फल है, तो मैं कहूंगा कि मेरा सारा परिश्रम धूल में मिल गया। यह हमारा लखनऊ का सेंटल जेल शहर से बाहर खुली हुई जगह में है। सुखदा उसी जेल के जनाने वार्ड में एक वृक्ष के नीचे खड़ी बादलों की घुड़दौड़ देख रही है। बरसात बीत गई है। आकाश में बड़ी धूम से घेर-घार होता है पर छींटे पड़कर रह जाते हैं। दानी के दिल में अब भी दया है पर हाथ खाली है। जो कुछ था, लुटा चुका।

जब कोई अंदर आता है और सदर द्वार खुलता है, तो सुखदा द्वार के सामने आकर खड़ी हो जाती है। द्वार एक ही क्षण में बंद हो जाता है पर बाहर के संसार की उसी एक झलक के लिए वह कई-कई घंटे उस वृक्ष के नीचे खड़ी रहती है, जो द्वार के सामने है। उस मील-भर की चार-दीवारी के अंदर जैसे दम घुटता है। उसे यहां आए अभी पूरे दो महीने भी नहीं हुए, पर ऐसा जान पड़ता है, दुनिया में न जाने क्या-क्या परिवर्तन हो गए। पथिकों को राह चलते देखने में भी अब एक विचित्र आनंद था। बाहर का संसार कभी इतना मोहक नथा।

वह कभी-कभी सोचती है-उसने सफाई दी होती, तो शायद बरी हो जाती पर क्या मालूम था, चित्त की यह दशा होगी। वे भावनाएं, जो कभी भूलकर मन में न आती थीं, अब किसी रोगी की कुपथ्य-चेष्टाओं की भांति मन को उद्विग्न करती रहती थीं। झूला झूलने की उसे कभी इच्छा न होती थी पर आज बार-बार जी चाहता था-रस्सी हो, तो इसी वृक्ष में झूला डालकर झूले। अहाते में ग्वालों की लड़कियां भैंसें चराती हुई आम की उबाली हुई गुठलियां तोड़-तोड़कर खा रही हैं। सुखदा ने एक बार बचपन में एक गुठली चखी थी। उस वक्त वह कसैली लगी थी। फिर उस अनुभव को उसने नहीं दुहराया पर इस समय उन गुठलियों पर उसका मन ललचा रहा है। उनकी कठोरता, उनका सोंधापन, उनकी सुगंध उसे कभी इतनी प्रिय न लगी थी। उसका चित्त कुछ अधिक कोमल हो गया है, जैसे पाल में पड़कर कोई फल अधिक रसीला, स्वादिष्ट, मधुर, मुलायम हो गया हो। मुन्ने को वह एक क्षण के लिए भी आंखों से ओझल न होने देती। वही उसके जीवन का आधार था। दिन में कई बार उसके लिए दूध, हलवा आदि पकाती। उसके साथ दौड़ती, खेलती, यहां तक कि जब वह बुआ या दादा के लिए रोता, तो खुद रोने लगती थी। अब उसे बार-बार अमर की याद आती है। उसकी गिरफ्तारी और सजा का सामाचार पाकर उन्होंने जो खत लिखा होगा, उसे पढ़ने के लिए उसका मन तड़प-तड़प कर रह जाता है।